वर्ष : द्वितीय अंक : तृतीय अगस्त–2020

# विंध्याचल कृषि

## एकेएस विश्वविद्यालय सतना
### का मुख पत्र

# झलकियाँ – एग्रीटेक मध्यप्रदेश (कृषि विज्ञन मेला) 2020

वर्ष : द्वितीय

अंक : तृतीय

अगस्त–2020

VINDHYACHAL KRISHI

# विंध्याचल कृषि



## एकेएस विश्वविद्यालय सतना
## का मुख्य पत्र

मुख्य संरक्षकः
**श्री बी.पी. सोनी**
कुलाधिपति
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना

*

संरक्षकः
**प्रो. पी.के. बनिक**
कुलपति
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना

*

अध्यक्षः
**इंजी. अनंत कुमार सोनी**
प्रतिकुलाधिपति
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना

*

सहअध्यक्षः
**डॉ. आर.एस.त्रिपाठी**
प्रतिकुलपति (अकादमिक)
**डॉ. हर्षवर्धन**
प्रतिकुलपति (विकास)
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना

*

मुख्य सलाहकारः
**डॉ. एस.एस. तोमर**
अधिष्ठाता कृषि संकाय
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना
**डॉ. के.आर. मौर्य**
निदेशक, उद्यान विज्ञान विभाग

*

मुख्य संपादकः
**डॉ. नीरज वर्मा**
विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना

*

संपादकः
**शैम्पी जैन एवं संजीव कु. सिंह**
शिक्षण सहायक
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना

*

सह–संपादकः
**डॉ. रमा शर्मा**
**अयोध्या प्रसाद पाण्डेय**
**आशुतोष गुप्ता**
**सात्विक सहाय बिसारिया**
शिक्षण सहायक
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना

*

ग्राफिक डिजाइनिंग
**आथीष खरे**
टाइपिंग एडीटिंग
**संजय बुनकर**

# अनुक्रमणिका


| क्र. | विषयवस्तु | पेज नं. |
|---|---|---|
| 1. | **गेहूँ की आदर्श प्रजातियों के लिये सस्य प्रबंधन** (शिव विलाश तिवारी) | 04 |
| 2. | **पशुपालन** (कौशिक तिवारी) | 05 |
| 3. | **पैडल चलित मूँगफली छीलक यंत्र** (रूपक कुमार देषभ्रतार, अजीत सराठे, विजय सिंह एवं मधुलिका सिंह) | 06 |
| 4. | **यूकेलिप्टस की खेती– लाखों की आय का साधन** (आर.सी. त्रिपाठी) | 08 |
| 5. | **किसानों की वर्तमान स्थिति और भविष्य की अर्थव्यवस्था** (यश शर्मा) | 10 |
| 6. | **वायरलेस सेंसर नेटवर्क का उपयोग करके कृषि उत्पादकता में वृद्धि** (मिर्जा समीउल्ला बेग) | 12 |
| 7. | **चने की फसल में कीट एवं रोग प्रबंधन** (अरविंद परमार) | 14 |
| 8. | **अम्लीय मृदा के प्रबन्धन से उत्पादकता वृद्धि** (अरुणिमा पालीवाल) | 16 |
| 9. | **घटती मृदा उर्वरता में टिकाऊ खेती** (आशुतोष गुप्ता, अयोध्या प्रसाद पाण्डेय) | 17 |
| 10. | **कृषि आतंकवाद** (Agroterorrism) (प्रीनू जायसवाल) | 21 |
| 11. | **सफेद मक्खी एवं उससे होनेवाले रोगों से बचाव** (डॉ. डूमर सिंह) | 24 |
| 12. | **मृदा सुधार के क्षेत्र में नैनो प्रौद्योगिकी का महत्व** (डॉ. नीरज वर्मा) | 28 |
| 13. | **स्वयं सहायता समूह – महिला सशक्तिकरण का एक प्रमुख माध्यम** (सात्विक सहाय बिसारिया) | 31 |
| 14. | **पानी से हमारी बेरुखी ठीक नहीं ''भारतीय परम्पराओं में जल संरक्षण व परंपरागत जल संरक्षण पद्धतियाँ''** (सात्विक सहाय बिसारिया) | 34 |
| 15. | **पौधों में सूक्ष्म तत्वों का विवरण** (सोनवीर चक, प्रियंका चक) | 38 |
| 17. | **मूली की उन्नत खेती** (लवकेश कुमार सोनी) | 40 |
| 18. | **सूचना तकनीक से सँवर रहा है किसानों का जीवन** (विनीत श्रीवास्तव एवं आस्था श्रीवास्तव) | 41 |
| 19. | **कद्दू की उन्नत खेती** (अरविंद परमार) | 43 |
| 20. | **आपातकाल स्थिति में पशुओं के लिए सुबबूल के पौधों से हरे चारे की व्यवस्था** (पंकज कुमार गुप्ता, आशुतोष गुप्ता, सात्विक सहाय बिसारिया एवं नीरज वर्मा) | 45 |
| 21. | **पौधों में पर्णीय व छिड़काव का महत्व** (शिखा, दीपरंजन सरकार) | 48 |
| 22. | **एक आँसू....** (निशांत चौहान) | 52 |

23. **कटहल कृषि उत्पादन तकनीक** (लवकेश कुमार सोनी) 53

24. **मशरूम उत्पादनः आय का उत्तम साधन** (आकांक्षा पाण्डेय, अंकिता पाण्डेय व लक्ष्मी) 56

25. **ग्रीष्मकालीन ऋतु में पशुपालकों के दुधारू पशुओं के साथ–साथ डेरी फार्म (गौशाला) के दुधारू पशुओं का सावधानीपूर्वक देख–भाल**
(पंकज कुमार गुप्ता, प्रवीण उपाध्याय, नीरज वर्मा, आशुतोष गुप्ता एवं सात्विक सहाय बिसारिया) 59

26. **जायद मौसम में मूँग की उन्नत खेती कैसे करें** (अंकिता पाण्डेय, आकांक्षा पाण्डेय, लक्ष्मी व ए.के. दीक्षित) 64

27. **पौष्टिक कोदो में समेकित रोग प्रबंधन** (डॉ. ए. के. जैन) 69

28. **जैविक कृषिः एक आवश्यकता**
(राहुल कुमार वर्मा, विनीता विष्ठ, अरविंद कुमार गुप्ता, आर. बी. वर्मा व विजय कुमार) 72

29. **उन्नत कृषि तकनीकीः संरक्षित खेती** (अंकिता पाण्डेय, लक्ष्मी, व आकांक्षा पाण्डेय) 76

30. **मूंग की खेती– (किस्में, व पैदावार)** (धीरेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी, राजवीर सिंह एवं अयोध्या प्रसाद पाण्डेय) 79

31. **हरी खाद – मिट्टी और फसल दोनों के लिए उपयोगी** (सुभाष सिंह) 81

32. **मधुमक्खी पालन में रोजगार के सुनहरे अवसर** (रमा शर्मा) 83

# गेहूँ की आदर्श प्रजातियों के लिये सस्य प्रबंधन

**शिव विलाश तिवारी**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

1. **बीज दर–** चूँकि आदर्श पौधा एकल कल्ले वाला होता है, अतः बीज की दर 2 गुनी करनी पड़ती है। जिससे कि वांछित पौध संख्या प्राप्त की जा सके।
2. **खाद की दर–** उर्वरक की मात्रा सामान्य प्रजातियों की तुलना में ज्यादा देनी होगी क्यांकि आदर्श पौधों की मौलिक आवश्यकता सामान्य पौधों की तुलना में ज्यादा होती है। आदर्श पौधे को सामान्य प्रजातियों की तुलना में ज्यादा उर्वरक प्रदान किया जाना चाहिए।
3. **अंतरण–** चूँकि आदर्श प्रजातियों में पौधे के कल्ले नहीं निकलेंगे अतः अंतरण 10 सेमी कतार से कतार होना चाहिये
4. **खरपतवार प्रबंध–** आदर्श पौधे में कम कल्ले निकलने से खरपतवारों के पौधों का उगना आसान हो जाता है, अतः यांत्रिक खरपतवार रोकथाम सम्भव नही है। इसलिए वैज्ञानिक एवं जैविक विधियों को लागू करना पड़ेगा।
5. **जल पूर्ती–** आदर्श पौधे ज्यादा नम दशा को पसंद करते हैं, अतः सिंचाई की संख्या ज्यादा करनी पड़ेगी।

**नोटः–** धान के आदर्श पौधों के गुण गेहूँ के आदर्श पौधों के गुण के समान ही होता है।

## महत्व तथा उपयोग :

दुनिया की धान्य फसलों में गेहूँ एक महत्वपूर्ण फसल है। (Precival 1921) और (Zimmerman 1933) के तदनुसार चावल ज्यादा जनसंख्या का प्रमुख भोजन है, लेकिन विकसित जनसंख्या का प्रमुख भोजन गेहूँ है।

1. गेहूँ का उपयोग प्रमुख रूप से रोटी बनाने मे किया जाता है।
2. गेहूँ के आटे में ग्लूटिन के कारण इसका उपयोग डबल रोटी तथा बिस्कुट बनाने में किया जाता है।
3. गेहूँ का प्रयोग सूजी, मैदा, चोकर, उत्तम किस्म की शराब बनाने में किया जाता है।
4. गेहूँ से दलिया बनाया जाता है।
5. हमारे देश मे जानवरों की संख्या ज्यादा होने के कारण गेहूँ का इस्तेमाल भूसा बनाने में किया जाता है।

# पशुपालन

**कौशिक तिवारी**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

पशुपालन कृषि विज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत पालतू पशुओं के विभिन्न पक्षों जैसे भोजन, आश्रय, स्वास्थ्य, प्रजनन आदि का अध्ययन किया जाता है। पशुपालन का पठन–पाठन विश्व के विभिन्न विश्वविद्यालयों में एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में किया जा रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एवं पशुपालन का विशेष महत्व है। सकल घरेलू कृषि उत्पाद में पशुपालन का 28–30 प्रतिशत का योगदान सराहनीय है। जिसमें दुग्ध एक ऐसा उत्पाद है जिसका योगदान सर्वाधिक है। भारत में विश्व की कुल संख्या का 15 प्रतिशत गायें एवं 55 प्रतिशत भैंसें हैं और देश के कुल दुग्ध उत्पादन का 53 प्रतिशत भैंसों व 43 प्रतिशत गायों और 3 प्रतिशत बकरियों से प्राप्त होता है। भारत लगभग 121.8 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन करके विश्व में प्रथम स्थान पर है जो कि एक मिसाल है और उत्तर प्रदेश इसमें अग्रणी है। यह उपलब्धि पशुपालन से जुड़े विभिन्न पहलुओं जैसे–मवेशियों की नस्ल, पालन–पोषण, स्वास्थ्य एवं आवास प्रबंधन इत्यादि में किए गये अनुसंधान एवं उसके प्रचार–प्रसार का परिणाम है। लेकिन आज भी कुछ अन्य देशों की तुलना में हमारे पशुओं का दुग्ध उत्पादन अत्यन्त कम है और इस दिशा में सुधार की बहुत संभावनायें है।

**रोगः**

लंगड़ा बुखार (Blackleg या 'ब्लैक क्वार्टर' या BQ) साधारण भाषा में जहरबाद, फडसूजन, काला बाय, कृष्णजंधा, लंगड़िया, एकटंगा आदि नामों से भी जाना जाता है। यह रोग प्रायः सभी स्थानों पर पाया जाता है, लेकिन नमी वाले क्षेत्रों में व्यापक रूप से फैलता है।

मुख्य रूप से इस रोग से गाय, भैंस एवं भेंड़ प्रभावित होती हैं। यह रोग छः माह से दो साल तक की आयु वाले पशुओं में अधिक पाया जाता है। यह गौ जाति में प्रायः तथा भैंस और भेड़ों में कभी–कभी होने वाला छिटपुट अथवा महामारी प्रकृति वाला जीवाणु (clostridium chauvoei bacteria) से पैदा होने वाला पशु रोग है, जिसमें साधारण ज्वर तथा मांसल भाग का दर्दयुक्त सूजन एवं लंगड़ापन प्रमुख लक्षण है। युवा तथा स्वस्थ पशु ज्यादा प्रभावित होते हैं।

**रोग के लक्षणः**

इस रोग में पशु को तेज बुखार आता है तथा उसका तापमान 106 डिग्री फॉरेनहाइट से 107 फॉरेनहाइट तक पहुंच जाता है। पशु सुस्त होकर खाना पीना छोड़ देता है। पशु के पिछली व अगली टांगों के ऊपरी भाग में भारी सूजन आ जाती है। जिससे पशु लंगड़ा कर चलने लगता है या फिर बैठ जाता है। सूजन वाले स्थान को दबाने पर कड़–कड़ की आवाज आती है। पशु चलने में असमर्थ होता है। यह रोग प्रायः पिछले पैरों को अधिक प्रभावित करता है एवं सूजन घुटने से ऊपर वाले हिस्से में होती है। यह सूजन शुरू में गरम एवं कष्टदायक होती है जो बाद में ठण्ड एवं दर्दरहित हो जाती है। पैरों के अतिरिक्त सूजन पीठ, कंधे तथा अन्य मांसपेशियों वाले हिस्से पर भी हो सकती है। सूजन के ऊपर वाली चमड़ी सूखकर कड़ी होती जाती है।

पशु का उपचार शीघ्र करवाना चाहिए क्योंकि इस बीमारी के जीवाणुओं द्वारा बनाया गया जहर शरीर में पूरी तरह फैल जाने से पशु की मृत्यु हो जाती है। इस बीमारी में प्रोकेन पेनिसिलीन काफी प्रभावशाली है। इस बीमारी के रोग निरोधक टीके लगाए जाते है। इसमें मृत्यु दर 80–100 प्रतिशत होती है।

**रोकथाम एवं बचावः**

- वर्षा ऋतु से पूर्व इस रोग का टीका लगवा लेना चाहिए। यह टीका पशु को 6 माह की आयु पर भी लगाया जाता है।
- रोगग्रस्त पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।
- भेडों में ऊन कतरने से तीन माह पूर्व टीकाकरण करवा लेना चाहिये क्योंकि ऊन कतरने के समय घाव होने पर जीवाणु घाव से शरीर में प्रवेश कर जाता है जिससे रोग की संभावना बढ़ जाती है।
- सूजन को चीरा मारकर खोल देना चाहिये जिससे जीवाणु हवा के सम्पर्क में आने पर अप्रभावी हो जाता है।

**उपचारः**

पेनिसिलीन, सल्फोनामाइड, टेट्रासाइक्लीन ग्रुप के एंटिबायोटिक्स का सहायक औषधि के साथ उपयोग, बीमारी की तीव्रता तथा पशु की स्थिति के अनुसार लाभकारी है। सूजन वाले भाग में चीरा लगाकर 2 प्रतिशत हाइड्रोजन परोक्साइड तथा पोटैशियम परमैंगनेट से ड्रेसिंग किया जाना लाभकारी होता है।

# पैडल चलित मूँगफली छीलक यंत्र

**रूपक कुमार देथभ्रतार, अजीत सराठे, विजय सिंह एवं मधुलिका सिंह**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

## परिचयः

शरीर के विकास एवं वृद्धि हेतु आवश्यक वसा तथा प्रोटीन की अधिकता के कारण ही मूँगफली को गरीबों का काजू कहा जाता है। सामान्यतः मूँगफली के दानों को सीधे ही भूनकर, या सेंककर या गुड़ इत्यादि के साथ खाया जाता है ताकि शरीर को उचित पोषण मिल सके। भारत में दलहन, तिलहन, खाद्य व नगदी सभी प्रकार की फसलें उगायी जाती हैं। तिलहनी फसलों की खेती में सरसों, तिल, सोयाबीन व मूँगफली प्रमुख हैं। मूँगफली गुजरात के साथ राजस्थान की भी प्रमुख तिलहनी फसल है। राजस्थान में बीकानेर जिले के लूणकरनसर में अच्छी किस्म की मूँगफली का अच्छा उत्पादक होने के कारण इसे राजस्थान का राजकोट कहा जाता है। ऐसे क्षेत्र जहाँ वार्षिक वर्षा लगभग 100 से.मी. तक है मूँगफली की खेती के लिए उपयुक्त है। मूँगफली के दाने में 22–28% प्रोटीन तथा 48–50% वसा पायी जाती है। जैसा कि विदित है कि मूँगफली के दानों में पर्याप्त मात्रा में तेल पाया जाता है जिसकी खाद्य गुणवत्ता भी बहुत अच्छी होती है। किन्तु उक्त सभी प्रकल्पों हेतु मूँगफली से दानों को अलग करना होता है। इसके बिना मूँगफली का किसी भी प्रकार से उपयोग असंभव है।

## वर्तमान परिदृश्य में मूँगफली के छिलके अलग करने की विधियांः

मूँगफली से दानों को निकालने के लिए बहुत सी विधियाँ प्रचलित हैं जिनका कि आगे वर्णन किया गया है। वर्तमान में मूँगफली के छिलके उतारने के लिए निम्न विधियों का उपयोग किया जाता हैः–

1. मानव शक्ति द्वारा
2. मानव चलित यंत्र द्वारा
3. शक्ति चलित यंत्रों द्वारा

**1 मानव शक्ति द्वारा–** यह एक ग्रामीण क्षेत्र की प्रचलित विधि है, जिसमें मूँगफली को किसी हैमर के माध्यम से फोड़ा जाता है तथा छिलके को अलग किया जाता है। यदि मूँगफली से शुद्ध बीज (बोने के लिए) प्राप्त करना हो तो यह बहुत दक्ष विधि मानी जाती है। मूँगफली फूटने के बाद विनोविंग ऑपरेशन से बीजों को अलग कर लिया जाता है।

**2 मानव चलित यंत्रों द्वारा–** इस विधि में यंत्रों को मानव (महिला/पुरुष) की सहायता से तथा पैडल व हैंडल चलाकर मूँगफली के छिलके उतारे जाते हैं।

**(a) हस्त चलित यंत्र द्वारा–** यह मशीन फल्ली को फोड़कर दाने अलग करती है। इस उपकरण को महिलायें या पुरुष आसानी से चला सकते हैं। इस इकाई में एक फ्रेम हैंडिल तथा छलनी होती है जिसमें आयताकार छेद होते हैं। एक बार में 1.5 से 2 कि.ग्रा. किलो फली फोड़ने के लिए इसमें डाली जाती है जिसे अवतल तथा दोलन करने वाले लोहे की शू के मध्य रगड़कर मूंगफली के छिलकों को अलग किया जाता है।

केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान भोपाल द्वारा निर्मित यह मशीन खड़े होकर चित्र 1 तथा बैठकर चित्र 2 आपरेट की जाती है। खड़े होकर चलने वाली मशीन की कार्यक्षमता 40 कि.ग्रा./घंटा तथा बैठकर चलने वाली मशीन की कार्यक्षमता 35 कि.ग्रा./घण्टा है।

चित्र 1

चित्र 2

**(b) पैडल चलित मशीन द्वारा–** केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल द्वारा निर्मित हस्तचलित मशीन को एकेएस विश्वविद्यालय में परिवर्तित किया गया है। जिसे एक पैडल के माध्यम से चलाया जाता है। जो चित्र 3 व चित्र 4 में दर्शाया गया है।

यह लोहे की फ्रेम पर स्थापित है। ताकि चालन के समय स्थिर बना रहे। चालक इसके सीट पर बैठकर पैदल चलाकर इसके दोलन सेक्टर को गति प्रदान करता है। जिससे मूँगफली और दोलन सेक्टर के बीच घर्षण उत्पन्न होता है तथा मूँगफली के छिलके को इंपैक्ट बल और राबिंग क्रिया से अलग हो जाते हैं। मूँगफली को एक हॉपर में रखा जाता है जिसकी क्षमता 20 से 25 kg मूँगफली की है। मूँगफली के छिलके उतर जाने के बाद मूँगफली के छिलके को हवा के माध्यम से या सूपा का उपयोग कर अलग कर लिया जाता है। प्रभावी दक्षता के लिए यह आवश्यक है कि मूँगफली पूरी तरह से सूखी हों।

चित्र 3

चित्र 4

**3 शक्ति चलित यंत्र द्वारा–** यह मशीन विद्युत मोटर तथा ट्रैक्टर इत्यादि के द्वारा चलाई जाती है। जिसमें मूंगफली को इम्पैक्ट बल तथा रगड़कर छिलकों से अलग किया जाता है तथा इसकी कार्य क्षमता लगभग 40 से 500 कि.ग्रा./घण्टा है जो विद्युत मोटर की शक्ति तथा यंत्र के आकार पर निर्भर करते हैं। इसमें मूँगफली को रंगड़कर छिलके को अलग किया जाता है। इसकी कार्यक्षमता हस्त व पैडल चलित यंत्रों से अधिक होती है, वहीं इसकी कीमत भी अधिक होती है। चित्र 5 व चित्र 6 में शक्ति चलित यंत्र दर्शाया गया है।

चित्र 5

चित्र 6

## तुलनात्मक विश्लेषण:

| क्र. | शक्ति चलित यंत्रों द्वारा | हस्त चलित यंत्र | पैडल चलित यंत्र |
|---|---|---|---|
| 1 | कुल लागत 30000 – 35000 रू. | कुल लागत 2400 रू. | कुल लागत 6000 रू. |
| 2 | क्षमता 40–500 कि.ग्रा./घण्टा | क्षमता 35–40 कि.ग्रा./घण्टा | क्षमता 20–25 कि.ग्रा./घण्टा |
| 3 | बीजों को छिलके से अलग करने की व्यवस्था उपलब्ध है। | बीजों को छिलके से अलग करने की व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। | बीजों को छिलके से अलग करने की व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। |

# यूकेलिप्टस की खेती– लाखों की आय का साधन

**आर.सी. त्रिपाठी**
कृषि वानिकी विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

यूकेलिप्टस (नीलगिरी) तेजी से बढ़ने वाली प्रजाति है। इस वृक्ष की औसतन उंचाई 30 मी. लगभग 15 वर्षों में कृषि तकनीक से हो सकती है। वैज्ञानिक विधि से खेती करने पर अनुमानित 10 लाख रू./हे. की आय प्राप्त की जा सकती है।

यह मिरटेसी वन परिवार का सदस्य है, जो मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ की जलवायु तथा वर्षा जल की उपलब्धता में आसानी से तैयार किया जा सकता है।

**नर्सरी विधिः**

नर्सरी हेतु दोमट मिट्टी, स्थाई फेंसिंग एवं जल स्रोत की व्यवस्था होनी चाहिए।

- क्षेत्र की गहरी जुताई पश्चात् पूर्व–पश्चिम दिशा में 5 x 1 मी. आकार के अंकुरण बेड तैयार कर प्रति बेड 10 तसला सड़ी गोबर की खाद मिलायें।
- नीलगिरी के बीज बहुत छोटे होते हैं। बीज वन अनुसंधान जबलपुर अथवा प्रमाणित बीज केन्द्रों से प्राप्त किया जा सकता है।
- बीज की बुवाई फरवरी माह के प्रथम सप्ताह में बीज को रेत में मिलाकर छिटका विधि से करें तथा ऊपर से हरी नेट अथवा सूखी घास मल्च के रूप में बिछाएं तथा हाथ झारे अथवा स्प्रिंगकलर विधि से सिंचाई करे।
- पॉलीथीन थैली 8 x 12 सेमी. आकार में मिट्टी रेत खाद 2:1:1 तैयार कर भरें तथा उन्हें बेड में पूर्व पश्चिम–दिशा में जमाकर रखें।
- अंकुरण बेड में जब पौधे 8–10 सेमी. उंचाई के हो जाएं तब उन्हें भरी हुई थैलियों में ट्रांसप्लांट करें तथा झारे या स्प्रिंगकलर से सिंचाई करें।
- पॉलीथीन थैली में रोपित पौधों को संतुलित धूप प्रदाय करने की दृष्टि से उनके ऊपर छाया हेतु हरी नेट लगायें।
- पौधों की सिंचाई प्रारंभ में प्रतिदिन, बाद में तीन के अंतराल से करें।
- यूरिया खाद का घोल 10 ली. पानी में 100 ग्राम मिलाकर माह– मार्च, अप्रैल एवं मई में दें।
- जून माह में पौधों की उंचाई वार ग्रेडिंग कर उनका स्थान परिवर्तन करें।
- ग्रीन नेट हटा दें तथा सिंचाई का अंतराल बढ़ाएं ताकि पौधों का अनुकूलन खुले वातावरण के लिए हो जाए।
- जून के अंत तक लगभग 1 मी. उंचाई के स्वस्थ पौधे नर्सरी में रोपण हेतु तैयार हो जाएंगे।

यदि कम मात्रा में पौधे रोपित करना है तो तैयार पौधे वन अनुसंधान संस्थान अथवा वन विभाग की रोपणियों से भी क्रय किए जा सकते हैं।

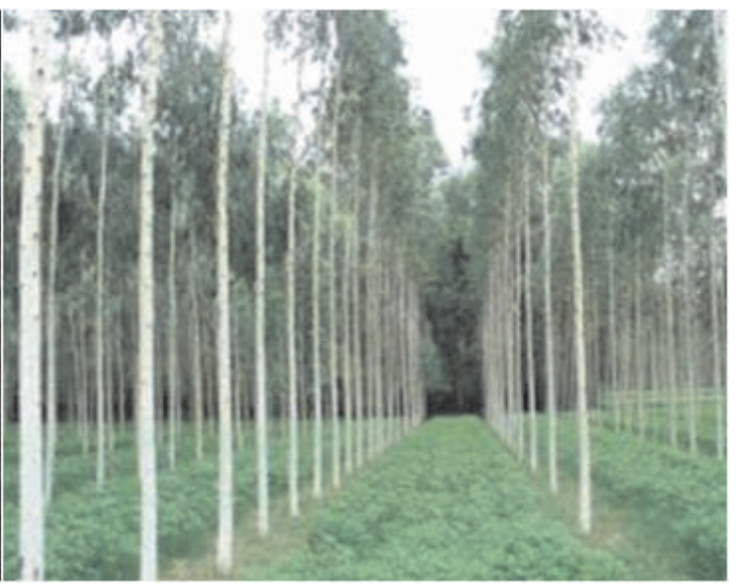

**रोपण विधिः**

- रोपण के पूर्व खेत की गहरी जुताई गर्मी में करायें।
- क्षेत्र की फेंसिंग तथा सिंचाई की उचित व्यवस्था बनाये।
- माह जून में 30 X 30 X 30 सेमी. आकार के गड्ढे बनवायें तथा प्रति गड्ढे 1/2 तसला पकी गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट गड्ढे की मिट्टी मे मिलायें। यदि दीमक का प्रकोप हो तो कीटनाशक से मिट्टी का उपचार भी करें।
- **कृषि वानिकी मॉडल–** अंतराल 3 X 1.5 मी. (पंक्ति से पंक्ति 3 मी., पौधा से पौधा 1.5 मी.) पौधा संख्या 2220 प्रति हेक्टेयर। इस माडल में पौधों की दो पंक्तियों के मध्य हल्दी, अदरक, प्याज आदि की खेती प्रथम तीन वर्ष तक की जा सकती है।
- **प्रेक्षत्र वानिकी मॉडल–** अंतराल 2 X 1.5 मी. (पंक्ति से पंक्ति 2 मी., पौधा से पौधा 1.5 मी.) पौधा संख्या 3330 प्रति हेक्टेयर।

**पौधों का रोपणः**

पौधा रोपण जुलाई के प्रथम सप्ताह में करें।

**रखरखावः**

- **निंदाई–गुड़ाई–**

| वर्ष | संख्या | माह |
|---|---|---|
| प्रथम वर्ष | 3 | अगस्त, अक्टूबर, दिसंबर |
| द्वितीय वर्ष | 2 | सितंबर, दिसंबर |
| तृतीय वर्ष | 2 | सितंबर, दिसंबर |
| चतुर्थ वर्ष | 1 | अक्टूबर |

- **उर्वरक–** प्रत्येक निंदाई के पश्चात् यूरिया तथा डीएपी 2:1 के अनुपात में प्रति पौधा क्रमशः 100 ग्राम तथा पश्चात्वर्ती वर्षों में 150 ग्राम प्रति पौधा दिया जाय।
- **सिंचाई–** सिंचाई करने से पौधों की वृद्धि तेजी से बढ़ती है अतः माह फरवरी से लेकर जून तक 5 बार सिंचाई प्रतिवर्ष करें।
- **सुरक्षा–** चराई, अग्नि तथा अन्य संभावित खतरों से सुरक्षा करें।
- **उपज–** (5 वर्ष बाद) यूकेलिप्सटस के लकड़ी का उपयोग पल्प वुड के रूप में कागज उद्योग में किया जा सकता है। इसके लिए इस क्षेत्र में अमलई पेपर मिल से किसान पूर्व अनुबंध कर सकते हैं।

**अ) कृषि वानिकी माडल**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 2220 यूकेलिप्टस पौधा | प्रति पौधा अनुमानित पल्प 400 किग्रा | 8.88 लाख किग्रा | दर 5 रू0 प्रति किलो | प्राप्त राशि 44.40 लाख रू0 |
| अदरक, हल्दी आदि से | 3 वर्ष की अनुमानित आय | – | – | 3.00 लाख रू0 |

**कुल–47.40 लाख**

**ब) प्रक्षेत्र वानिकी माडल**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 3000 पौधा | प्रति पौधा अनुमानित पल्प 400 किग्रा | 12.00 लाख किग्रा | दर 5 रू0 प्रति किलो | प्राप्त राशि 60.00 लाख रू0 |

**कुल–60.00 लाख**

**लागतः**

- पौधा तैयारी, पौधा क्रय, क्षेत्र तैयारी, रोपण, रखरखाव, फेंसिंग सिंचाई आदि। 6.40 लाख रू0 शुद्ध आय
- कृषि वानिकी माडल 41.00 लाख रू0
- औसत आय 8.20 लाख रू0 प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष
- प्रक्षेत्र वानिकी माडल 53.60 लाख रू0
- औसत आय 10.72 लाख रू0 प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष

# किसानों की वर्तमान स्थिति और भविष्य की अर्थव्यवस्था

**यश शर्मा**
प्रबंधन विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

भारत हमेशा से ही कृषि प्रधान देश रहा है। जब भारत देश 1947 में आजाद हुआ तब देश की निर्भरता कृषि उत्पादन पर लगभग 75 प्रतिशत थी। अतः भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि उत्पाद की एक बड़ी हिस्सेदारी थी। भारतीय अर्थव्यवस्था आज भी कृषि पर निर्भर है और आने वाले समय में भी कृषि पर निर्भर रहेगी। एक समय ऐसा था कि घरेलू उत्पाद से भारत स्वयं की आपूर्ति नहीं कर पा रहा था और विदेशों पर निर्भर था। देश में साक्षरता बढ़ी तथा कृषि में नई तकनीक का उपयोग किया जाने लगा जिस कारण उत्पादन क्षमता बढ़ गई। आज भारत में कृषि की स्थिति यह है कि भारत स्वयं के घरेलू उत्पाद की आवश्यकताओं की आपूर्ति करने में सक्षम है और विदेशों में भी घरेलू उत्पादों को प्रदान कर रहा है। इससे भारत की अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा मिली है।

भारतीय कृषक आज भी प्रकृति पर पूर्णतया निर्भर है यही कारण है कि भारतीय कृषकों को कभी सूखा, बाढ़ अथवा अन्य कई कारणों से काफी नुकसान उठाना पड़ता है। विषम परिस्थितियों को सुधारने के लिए सरकार ने समय–समय पर कई कदम उठाये हैं लेकिन किए गए उपाय किसानों के लिए पर्याप्त नहीं रहे और विषम परिस्थितियां अभी भी बनी हुई हैं, इन्हीं कारणों से धीरे–धीरे कई किसानों ने खेती छोड़कर अन्य व्यवसायों में जाना प्रारंभ कर दिया है। यह विशय भारत के लिए चिंताजनक है क्योंकि कृषि उत्पादन कम होता जा रहा है। जब भारत आजाद हुआ था तब सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 50 प्रतिशत से ज्यादा योगदान कृषि का था जबकि वर्तमान में यह घटकर 18 प्रतिशत हो गया जो कि अत्यंत सोचनीय है।

हालांकि कृषकों के पलायन से कृषि उद्योग पर झटका लगा है, फिर भी आज भारत घरेलू उत्पाद का शुद्ध निर्यातक है लेकिन अगर किसानों की समस्याओं को ध्यान रखते हुए कड़े कदम नहीं उठाए गए, तो वह दिन दूर नहीं होगा जब भारत शुद्ध आयातक बन जाएगा और इस वजह से भविष्य में भारत का व्यापार संतुलन बिगड़ सकता है। संतुलन को बनाए रखने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने होंगे–

1. किसानों को तकनीकी सुविधा मुहैया कराई जाय और न सिर्फ मुहैया कराई जाय बल्कि यह कोशिश की जाय कि तकनीकी सुविधाएं किसानों को सस्ते एवं उचित दामों में मिल सके। किसानों को आने वाली नई तकनीक के बारे में बताया जाय। नई तकनीकों को उपयोग करने के तरीके और इनसे होने वाले फायदे समझाए जाएं। इससे किसान नई तकनीकों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित होंगे और अपनी क्षमता बढ़ा सकेंगे।
2. किसानों को उचित दामों में बीज, जैविक खाद इत्यादि मुहैया कराया जाए। इसके लिए सरकार को उचित योजनाएं बनानी होंगी ताकि किसानों को सस्ते दामों में अच्छे बीज उपलब्ध हो सकें। इतना ही नहीं निजी कम्पनियों को भी इस क्षेत्र में आने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इलेक्ट्रानिक का उपयोग करते हुए ऑनलाइन बीजों एवं खाद की खरीददारी को भी बढ़ावा देना चाहिए। इससे किसानों को निम्नलिखित फायदे होंगे–
   अ) किसानों को बाजार में उपलब्ध सभी प्रकार के बीजों एवं खाद के बारे में जानकारी आसानी से प्राप्त हो जाएगी।
   ब) किसानों को उचित दामों में बीज और खाद उपलब्ध होंगे।
   स) किसानों को बीज और खाद की उपलब्धता आसानी से घर पर ही हो जाएगी, जिस कारण उन्हें भटकना नहीं पड़ेगा।
3. सरकार ने कई सरकारी योजनाएं बनाई और चला रही हैं पर इनमें से कुछ योजनाएं जमीनी स्तर पर नहीं आ पातीं और आखिरी व्यक्ति तक इन योजनाओं का लाभ नहीं पहुंच पाता। इसके लिए सरकार को एक बड़ा कदम उठाना चाहिए और कई अनावश्यक योजनाओं को हटाकर सिर्फ कुछ कारगर और जरूरी योजनाओं पर ध्यान देना चाहिए। ऐसा करने से बनाई गई योजनाओं का लाभ सही मायने में किसानों को मिल पाएगा।
4. सरकार योजनाएं बनाती है और इन योजनाओं के लिए एक बहुत बड़ निधि आबंटित करती है। जैसे कि सूखा या अतिवृश्टि होने पर किसानों के नुकसान की भरपाई करने के लिए सरकार फण्ड आबंटित करती है, पर कई बार यह फण्ड किसानों तक नहीं पहुंच पाते। अतः अनुवीक्षण की

अत्यंत आवश्यकता है। समय–समय पर इन योजनाओं और आबंटित निधि की समीक्षा करने की भी आवश्यकता है।

5. किसानों में साक्षरता बढ़ाई जाय ताकि वे नई तकनीकों को अच्छी तरह समझ सकें और नई तकनीक अपना सकें ताकि कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकें।
6. आज भारत में किसान उत्पादन बढ़ाने के लिए तरह–तरह के रसायनों का उपयोग कर रहे हैं। ये रसायन सिर्फ अनाज की गुणवत्ता को ही नहीं खराब कर रहे हैं बल्कि जमीन की गुणवत्ता को भी खराब कर रहे हैं। रसायनों से उत्पादित अनाज स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है। केन्द्रीय शोध संस्थान (उद्यानिकी) ने इस विषय पर शोध किया है और निम्न तरह की खेती अपनाने की सलाह दी है।

अ) आर्गेनिक खेती

ब) बायोडायनामिक खेती

स) प्राकृतिक खेती

शोध करने के पश्चात यह भी बताया कि उपरोक्त तीनों प्रकार की खेती के मिश्रण से उत्पादन का प्रतिशत और भी बढ़ाया जा सकता है और रसायनों का उपयोग किए बिना ही खेती की जा सकती है।

अतः कृषकों को साधन संपन्न करना होगा ताकि वे इस व्यापार से अपना जीवन–यापन अच्छी तरह कर सकें और अन्य लोग भी कृषि को व्यापार के तौर पर अपनाएं ताकि भारत की अर्थव्यवस्था में संतुलन बना रहे। और हमारा भारत प्रगति करते हुए शीर्ष पर पहुंच सके।

# वायरलेस सेंसर नेटवर्क का उपयोग करके कृषि उत्पादकता में वृद्धि

**मिर्जा समीउल्ला बेग**
कंप्यूटर विज्ञान और आईटी विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

## वायरलेस सेंसर नेटवर्कः

हम वायरलेस सेंसर नेटवर्क टेक्नालॉजी का उपयोग करके कृषि की उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं। इस टेक्नालॉजी में हम सेंसर का उपयोग करके खेत की जानकारी लेते है। जैसे खेत का तापमान, मिट्टी की नमी या फिर पानी की जरूरत है अथवा नहीं। इस टेक्नालॉजी के द्वारा हम घर बैठे यह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि खेत को पानी कि जरूरत है या नहीं या खेत का कितना तापमान है। इस टेक्नालॉजी में सेंसर नोड का इस्तेमाल किया जाता है। ये जो सेंसर होते हैं ये तापमान या नमी को सेंस करते हैं और उस सेंस किये हुए डाटा को आगे नोड को भेज देते हैं। ये नोड डाटा को ले कर बेस स्टेशन या सीधे सर्वर को भेज देते है। सर्वर में स्टोर हुए डाटा को हम अपने सिस्टम से आसानी से एक्सेस कर सकते हैं और ज्ञात कर सकते हैं कि हमारे खेत का तापमान या नमी कैसी है। इस टेक्नालॉजी में इंटरनेट ऑफ थिंग्स का प्रयोग किया जाता है। यदि हमारे देश के किसान इस टेक्नालॉजी का प्रयोग करें तो वे निश्चित ही अपने खेत की उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं।

एक वायरलेस सेंसर नेटवर्क में घने रूप से वितरित नोड्स होते हैं जो Sensing Signal Processing Embedded Computing और साथ ही Connectivity में मदद करते हैं। Sensor विभिन्न व्यवस्थाओं में तैनात हैं। इसे पॉइंट टू पॉइंट मास्टर–स्लेव कॉम्बिनेशन, शॉर्ट–हॉप या मल्टी–हॉप कहा जा सकता है। डिजाइन Procedures को सूचना Processing, नेटवर्क के साथ–साथ Operating, प्रबंधन, गोपनीयता, अखंडता, उपलब्धता और इन–नेटवर्क या स्थानीय Processing सहित कई विषयों की आवश्यकता होती है। सेंसर नोड WSN का एक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है और यह Processing में सक्षम है, Relevant जानकारी इकट्ठा करने और अन्य नोड्स के साथ संचार करने में सक्षम है जो नेटवर्क का हिस्सा हैं। प्रत्येक नोड जो वायरलेस नेटवर्क का हिस्सा है, जानकारी को Moved करने में सक्षम है और वे वायरलेस लिंक का उपयोग करके इसे पूरा करते हैं। नोड पर मौजूद ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम Specified डोमेन में मौजूद नोड्स का सही स्थान खोजने में मदद करता है। सेंसर नोड का डिजाइन Sensor Processing, Power Management Place और इन पर एम्बेडेड सॉफ्टवेयर का उपयोग करता है। एम्बेडेड सॉफ्टवेयर Application Layer पर काम करता है और यह एक सेंसर नोड पर कई Interface Specified करता है। उन कई इंटरफेस Specifications के अनुसार एक Structured Platform को डिजाइन करने में मदद करते हैं और Implementation Process को आसान बनाते हैं।

Smart Farming किसानों को Managed करने में मदद करती है जैसे Crop Farming, Soil Education और इससे सम्बंधित विवरण का किसानों को जानकारी देना जिससे किसान खेती की भूमि को अच्छी तरह पहचान सके और उसके अनुसार फसल उगा सके। A Site Specific डेटाबेस बनाए जाने चाहिए ताकि फसलों का प्रबंधन हो सके और एक मजबूत ज्ञानाधार के साथ Decision Support System और Conscious Parameter निर्मित किये जा सकें। Sensed डेटा मौसम, तापमान, जैसी पर्यावरणीय परिस्थितियाँ हवा की गति, हवा की दिशा, मिट्टी की नमी, मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुण जैसे पीएच स्तर को हम अपने सिस्टम में स्टोर कर लेंगे जिससे हमे वहां की सूचना मिल जाएगी जिससे हम उसके अनुसार फसल को लगा सकते हैं।

किसान मुख्य रूप से पानी की कमी और मिट्टी का बांझपन का सामना कर रहे हैं। इन सभी समस्याओं को हम स्मार्ट फार्मिंग के द्वारा हल कर सकते हैं। यह विधि हमे होशियार बनाती है। जिसके द्वारा हम अपनी खेती को मुनाफे में बदल सकते हैं। इसमें, Sensor का उपयोग तापमान और नमी का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है जो खेत में लगे सभी पौधों की देखभाल करने में मदद करता है। यह एक WiFi आधारित प्रणाली है जिसके द्वारा हम तापमान की निगरानी एक रिमोट के द्वारा करते हैं। इससे हम अपनी कृषि को और उन्नत कर सकते हैं। इसमें नोड सीधे डाटा को बेतार रूप से एक केंद्रीय सर्वर को भेजता है जहाँ पर डाटा को संग्रहित किया जाता है। इस डाटा को हम अपनी आवश्यकता के अनुसार जांच और प्रदर्शित करने के लिए ले सकते हैं। यहाँ पर ज्ञान का आधार इंटरनेट ऑफ थिंग्स है जिसके द्वारा हम अपने सभी परिणाम देख सकते हैं। इन मूल्यों के आधार पर हम पानी की कमी की अवधि के दौरान मिट्टी की नमी को सेंस करके सेंसर नोड पानी के छिड़काव को सक्रिय करता है। जब पानी पर्याप्त फैला दिया जाता है तब पानी का छिड़काव बंद कर दिया जाता है। इस तरह पानी संरक्षित होता है और उगाई जाने वाली फसलें अच्छी होती है।

## कृषि का परिचयः

कृषि ने मानव सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज भोजन की बढ़ती मांग के लिए विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं कि किस तरह खाद्य उत्पादन को तकनीक का उपयोग करके कई गुना विकसित किया जाये। आज वैश्विक जनसँख्या बढ़ती जा रही है इसलिये उत्पादन को बढ़ाने के लिए आधुनिक कृषि की आवश्यकता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हम आज नई तकनीकों और अन्य समाधानों को लागू कर रहे हैं। कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए हमें कृषि से सम्बंधित जानकारी को एकत्र करना होगा, इसके अलावा खतरनाक जलवायु परिवर्तन और पानी की कमी आदि समस्याओं को भी समझना होगा, इसके लिए हमे स्मार्ट फार्मिंग का उपयोग करना होगा। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए निर्णय लेना अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है कि हम एक ऐसा सिस्टम बनायें जो कि स्वचलित हो जिसके द्वारा हम घर बैठे अपने खेत से सम्बंधित जानकारी को एकत्र कर सकें और उस जानकारी के

अनुसार खेती करें। इस अर्थ में हम प्रौद्योगिकी जैसे सर्वव्यापी कंप्यूटिंग, वायरलेस सेंसर नेटवर्क (डब्ल्यूएसएन), रेडियो फ्रीक्वेंसी मॉड्यूल (आरएफआईडी), क्लाउड कंप्यूटिंग, इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IOT), उपग्रह निगरानी, रिमोट सेंसिंग, आदि का उपयोग कर रहे हैं। कृषि में वायरलेस सेंसर नेटवर्क के उदय ने एक नई दिशा प्रदान किया है, जिसके द्वारा हमारी कृषि आसान हो गई है।

**सटीक कृषि:**

कृषि डोमेन में आर्द्रता, वायु दबाव और मिट्टी की नमी के मापदंडों जैसे डेटा की निगरानी और एकत्र करने के लिए एक विश्वसनीय वायरलेस सेंसर नेटवर्क (डब्ल्यूएसएन) प्रणाली के डिजाइन और निर्माण पर केंद्रित है। यह प्रणाली डब्ल्यूएसएन और मशीन–लर्निंग एल्गोरिदम में तकनीकों का उपयोग करके डेटा–लॉगिंग और डेटा–विश्लेषण सेवाओं के लिए अनुमति दी जाएगी। हमारा मानना है कि इस क्षेत्र में वास्तविक समय के आंकड़ों को इकट्ठा करने और कच्चे डेटा से सुविधाओं को निकालने के लिए उन्नत डब्ल्यूएसएन तकनीक को लागू करके, किसान फसल विकास और कम उत्पादन लागत में अधिक अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान में हम मीका नोड्स का उपयोग करके कृषि क्षेत्र के अंदर सिंचाई और WSN के निर्माण पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। सेंसर नोड्स बैरोमीटर का दबाव, प्रकाश, आर्द्रता और तापमान डेटा एकत्र करेंगे। हम आगे के विश्लेषण के लिए एकत्रित आंकड़ों का उपयोग करने की उम्मीद करते हैं, जिसका उपयोग क्षेत्र में वास्तविक समय के अलार्म सिस्टम के ट्रिगर्स को सेट करने के लिए किया जा सकता है।

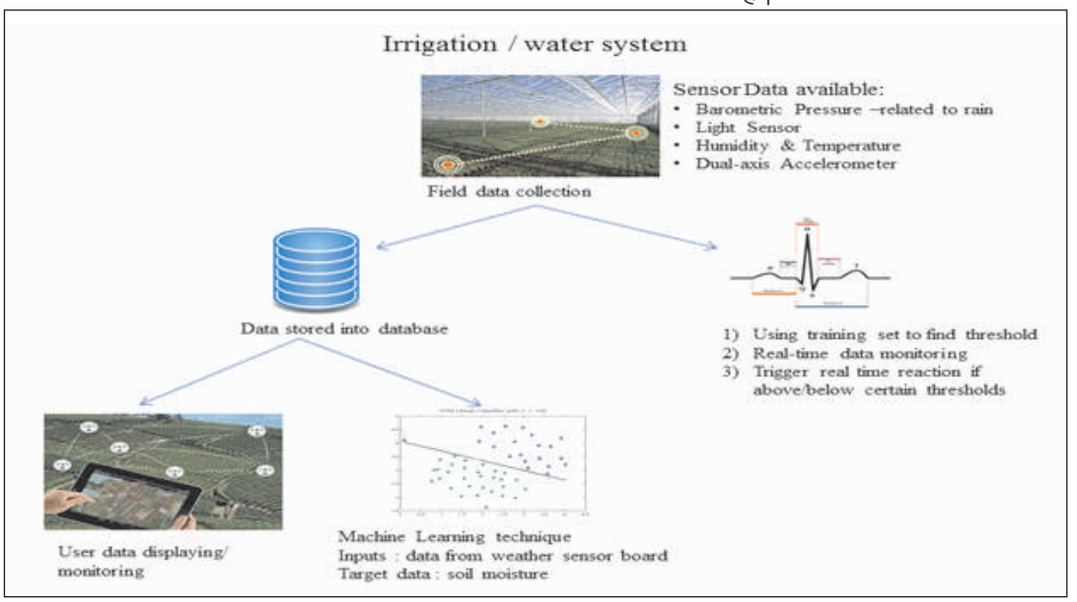


भारतीय संदर्भ में कृषि क्षेत्र अभी भी पुरानी तकनीक का उपयोग कर रहा है और संपूर्ण प्रणाली को उन्नत करना महत्वपूर्ण है। वर्तमान तकनीक सही फसल प्राप्त करने, मौसम, मिट्टी के तापमान और हवा में नमी जैसे विभिन्न मापदंडों का विश्लेषण करने में मदद करेगी और इससे किसान को अपने लाभ को अधिकतम करने में मदद मिलेगी। वायरलेस सेंसर नेटवर्क (डब्ल्यूएसएन) कुशल और सस्ती परिशुद्धता कृषि के लिए सक्षम करने वाली तकनीक है। सस्ती परिशुद्धता कृषि से पहले, किसानों को अपने बढ़ते क्षेत्रों को सटीक रूप से लक्षित करने के लिए उपग्रह और विमान इमेजरी या अन्य मानचित्र आधारित प्रणालियों पर निर्भर रहना पड़ता था।

# चने की फसल में कीट एवं रोग प्रबंधन

**अरविंद परमार**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

चना उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। विश्व का 70 प्रतिशत चने का उत्पादन भारत में होता है। चना भारत की एक प्रमुख दलहनी फसल है। इसमें 21–22 प्रतिशत प्रोटीन होता है। भारत में 75.4 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में चने की खेती की जाती है, जिससे 57.5 लाख टन उत्पादन एवं 7.62 क्विंटल उत्पादकता प्राप्त होती है।

**चने का फली फेदक कीटः**

चने की सूंडी प्रायः चने की पत्तियों, शाखाओं और फूलों पर अपने अंडे देती हैं। इसके अंडे भूरे, सफेद चमकीले गोलाकार एवं इसकी सतह पर तिरछी धारिया होती हैं। सूंडी हरे और भूरे रंग की होती हैं जो पौधे की पत्ती और शाखाओं को खाती हैं। लगभग 20 दिनों बाद इसकी सूंडी पूर्ण विकसित हो जाती हैं जिसका रंग हरा बगल में भूरे पीले और हल्के काले रंग की धारी होती हैं। सूंडी का आधा भाग फली के बाहर और आधा भाग फली के अन्दर दिखाई देता है। कृमिकोष फली से बाहर निकलकर जमीन में 2–4 सेंटीमीटर की गहराई में धस जाता है। कृमिकोष हरा लाल और भूरे रंग का होता है। यह 20 दिनों बाद अपनी प्रौढ़ अवस्था में आ जाता है। इसका प्रौढ़ हल्के भूरे और बादामी रंग का होता है।

**नियंत्रण के उपाय–**

- गर्मी के दिनों में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए।
- सही समय पर खेत की बुआई करनी चाहिए।
- अन्तः फसल के रूप में चने की फसल के साथ सरसों, अलसी, जौ और गेंहूँ की बुआई करनी चाहिए।
- खेत में 5–6 प्रति हेक्टेयर लाइट प्रपंच लगाना चाहिए।
- चने की खड़ी फसल में फली भेदक कीट की निगरानी के लिए 4–5 फेरोमोन प्रपंच को जमीन से 2 फीट की ऊँचाई पर लगाना चाहिए। इसमें मादा कीट की गंध वाला सेप्टा लगा देना चाहिए जिससे नर कीट आकर्षित होकर ट्रैप में फस जाये।
- एन. पी .वी. 250 लार्वा तुल्य के घोल का छिड़काव करना चाहिए। एन. पी. वी. के घोल में एक ग्राम गुड़, एक ग्राम टिपोल, एक ग्राम तरल साबुन को मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।
- परजीवियों को बढ़ावा देने के लिए खेत के चारों ओर धनिया की फसल लगाना चाहिए।
- कीट भक्षियों को आकर्षित करने के लिए चने की खड़ी फसल में अंग्रेजी के ''T'' आकर के पक्षी टिकान लगाना चाहिए जिससे पक्षी उनके लार्वा को खा सकें।
- 15 किलो ग्राम नीम कीटनाशक दवा का प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- बेसिलस थुरिजिंसिस (बी.टी.) जीवाणु का एक किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- चने की फसल के चारों ओर गेंदे की फसल लगाना चाहिए।
- एंडॉक्सोकार्व 14.5 एस.सी. / 0.5 मि.ली.प्रति लीटर पानी मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

**चने का कटवर्मः**

यह चने की फसल का प्रमुख कीट है। यह कीट रात्रि में चने की फसल को नुकसान पहुचाता है जो दिन में मिटटी में 2–4 इंच की गहराई में छिप जाता है। इस कीट की सूंडी अवस्था फसल को नुकसान पहुचाती है। सूंडी पौधे की पत्तियों और तने को काटकर जमीन पर गिरा देती है। कटी हुई शाखाओं को खाने के लिए जमीन में मिट्टी के ढेलों के नीचे ले जाती है। सूंडी का रंग गहरा भूरा, हल्का काला एवं उपरी सतह पर हल्के भूरे पीले रंग की धारियां होती है साथ में लाल रंग का सिर होता है। पौधे को देखने पर पके हुए पौधों के समान दिखाई देता है।

**नियंत्रण के उपाय–**

- गर्मी के दिनों में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए।
- गोबर की खाद का उपयोग करना चाहिए।
- जिस खेत में चने की फसल लगाई गई हो उस खेत में फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- खेत की मेंड़ पर गेंदा लगाना चाहिए।
- प्रकाश प्रपंच लगना चाहिए।
- बेसिलस थूरिनजेसीस का छिडकाव करना चाहिए।
- अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक चने की बुआई कर देना चाहिए।
- इस कीट के प्रकृतिक शत्रु टाइगर बीटल को खेत में छोड़ देना चाहिए।
- क्यूनोल्फोस 20 ई.सी. 1000 मि.ली./हेक्टेयर का छिड़काव करना चाहिए।
- प्रोफेनोफोस 50 ई.सी. 1.5 ली./हेक्टेयर का छिड़काव करना चाहिए।

**चने का उकटा रोगः**

यह रोग चने के खेत में छोटे–छोटे टुकड़ों में दिखाई देता है। प्रारम्भ में पौधे की पत्तियां पीली हो जाती हैं तथा पौधे की पत्तियां मुरझाकर सूखने लगती हैं सूखने के बाद पत्तियों का रंग भूरा या बादामी हो जाता है। यदि तने को जड़ के पास से चीरकर देखा जाए तो धागे नुमा संरचना दिखाई देती है।

**नियंत्रण के उपाय–**

- चने की बुआई उचित समय पर (अक्टूबर से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक) करनी चाहिए।
- गर्मियों के दिनों में गहरी जुताई करनी चाहिए।
- बीज को मिट्टी में 8–10 सेंटीमीटर की गहराई में बोना चाहिए।

- चने के उकटा रोग का प्रकोप कम करने के लिए तीन साल तक फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- अन्तः फसल के रूप में सरसों, अलसी और जौ की बुआई करनी चाहिए।
- चने की उकटा रोग प्रतिरोधी किस्में उगानी चाहिए, जैसे पूसा चमत्कार, जे.जी.–16, जे.जी.–74 जवाहर काबुली।
- जैव कवकनाशी (बायोपेस्टिसाइड) ट्राइकोडर्मा पाउडर 10 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए।

**ड्राई रूट राटः**

इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियां झुलस जाती हैं ग्रसित पौधों को उखाड़कर देखने पर पौधे की जड़ें फफूंद के कारण सड़ जाती हैं जिसके कारण पूरा पौधा सूख जाता है।

**नियंत्रण के उपाय–**

- चने के खेत की समय–समय पर निंदाई–गुड़ाई करनी चाहिए।
- उचित दूरी पर बुआई करनी चाहिए।
- जिस खेत में चने की फसल लगाई गई हो उस खेत में फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- थिरम 3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए।

# अम्लीय मृदा के प्रबन्धन से उत्पादकता वृद्धि

**अरुणिमा पालीवाल**
वानिकी महाविद्यालय
वी. चं. सिं. ग. उत्तराखण्ड उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय
रानिचौरी टिहरी, गढ़वाल

हमारे देश की लगभग 90 मिलियन हे0 भूमि अम्लीय है, जो सम्पूर्ण क्षेत्र का 1/4 भाग के करीब है। जिसमें से आधे भाग पर खेती एवं शेष आधे भाग पर वानिकी एवं अन्य कार्य सम्पादित किये जा रह हैं। इन अम्लीय मृदाओं में 25 मिलियन हेक्टेयर भूमि जिसका पी. एच. 5.5 से कम है, की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा बहुत खराब है। इस प्रकार की भूमि की उर्वरा शक्ति बहुत कम होती है, क्योंकि फासफोरस, कैल्सियम, मैग्नीशियम, मालिब्डेनम एवं बोरान आदि पोषक तत्व अल्पमात्रा में उपलब्ध होते हैं, जबकि एल्यूमिनियम तथा आयरन की मात्रा अधिक होने के कारण जहरीला प्रभाव दर्शाते हैं। अम्लीयता ग्रस्त मृदाओं में उवर्रक तत्वों एवं चूना का समुचित मात्रा में प्रयोग करके उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने अम्लीयता प्रभावित मृदा के सुधार हेतु ''मूल्य प्रभावी तकनीक'' का कृषकों के प्रक्षेत्रों पर परीक्षण करके निम्नांकित तथ्यों को सुस्पष्ट किया।

- अम्लीयता प्रभावित क्षेत्रों के कृषकों के खेतों में, कूँड़ों में चूना को 2–4 क्विंटल/हे0 की दर से प्रयोग करने से किसानों द्वारा सामान्य रूप से अपनायी गई तकनीक के प्रयोग से प्राप्त उपज की तुलना में 14 से 52 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त होती है।
- उर्वरकों की संस्तुत मात्रा में (100 किग्रा. एन.पी.के.) प्रयोग करने से किसानों द्वारा अपनायी गई सामान्य उर्वरक तकनीक से प्राप्त उपज में 15 से 99 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त हो सकती है।
- उर्वरकों (100 किग्रा. नत्रजन, फोस्फोरस एवं पोटाश) एवंचूना के संयुक्त प्रयोग से किसान की तकनीक की तुलना में 49–189 प्रतिशत अधिक उपज सम्भावित है।
- औसत लाभः व्यय का अनुपात 2.5 है, जो चूने तथा उर्वरक के संयुक्त प्रयोग से 1.4 से 4.3 तक आँकलित किया गया है।
- 50 किग्रा. संस्तुत उर्वरक नाइट्रोजन, फोस्फोरस व पोटाश + चूना 2–4 क्विंटल/हे. ने 100 संस्तुति उर्वरक की तुलना में अधिक पैदावार दे सकता है।
- अम्लीयता प्रभावित क्षेत्र में तकनीक के प्रयोग से 1 टन प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष उपज अधिक प्राप्त होती है।
- देश के 25 मिलियन हेक्टेयर अम्लीय मृदा के सुधार से 25 मिलियन टन अतिरिक्त खाद्यान्न की प्राप्ति सम्भव है। जिससे 1600 करोड़ रु0 प्रतिवर्ष की दर से अतिरिक्त लाभ प्राप्त हा सकता है।
- अम्लीयता से प्रभावित मृदा से भरपूर उपज प्राप्त करने हेतु उक्त क्षेत्रों के कृषकों को सस्ते दर पर चूना पेपर मिल स्लज, लाइम फास्फोजिप्सम की पर्याप्त मात्रा एवं उपयुक्त तकनीक का प्रयोग अधिक लाभकारी होता है।

# घटती मृदा उर्वरता में टिकाऊ खेती

**आशुतोष गुप्ता, अयोध्या प्रसाद पाण्डेय**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

हमारे देश की बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य सामग्री की मांग में भी काफी वृद्धि हो रही है, जिससे हमारे प्राकृतिक संसाधनों का भी लगातार दोहन होता जा रहा है। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में चार दशक पहले हरित क्रान्ति में उर्वरकों, अधिक उपज देने वाली फसलों की किस्मों और पानी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। लेकिन समय के साथ हरित क्रान्ति का रंग फीका होता जा रहा है, इससे देश की सरकार कृषि वैज्ञानिकों व किसानों के लिए एक चिन्ता का विषय बना हुआ है, क्योंकि वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन की मांग लगभग 259 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2025 में लगभग 300 मिलियन टन हो जायेगी और साथ ही कृषि का क्षेत्रफल भी दिनों दिन घटता जा रहा है। अतः यह स्वाभाविक हैं कि प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक से अधिक उत्पादन लिया जा सके, जिससे मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा में भी अत्यधिक कमी हो रही है। इन परिस्थितियों में मृदा उर्वरता में होने वाली गिरावट को रोकने के लिए उचित प्रबंधन करना अति आवश्यक है। इसमें दो राय नहीं है कि दम–तोड़ती मृदा की उर्वरता में सुधार करके टिकाऊ खेती करने की मुहिम चलानी होगी।

## मृदा की घटती उर्वरता:

मृदा खेती का आधार है और मृदा उर्वरता व मृदा उत्पादकता में आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है। मृदा की उर्वरता घटती है तो मृदा के द्वारा फसल का उत्पादन बढ़ाने की क्षमता भी कम होती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि फसल उत्पादन के लिए मृदा की उर्वरता हमेशा अच्छी रहे। फसलों के उत्पादन के परिणामस्वरुप जितना पोषक तत्व फसलें जमीन से उपयोग कर रही है उस मात्रा को हम किसी प्रकार पुनः धरती में लौटाने का का ताजा उसमें। ईमानदारी से प्रयास करें। ऐसा न करने पर भूमि के पोषक तत्व भंडार का दोहन होगा और मृदा की उर्वरता में गिरावट होती जायेगी। हम गत 4 दशकों से मृदा के साथ अनैतिक व्यवहार करते आये हैं जिसके फलस्वरुप शुरुआत में मृदा में केवल नाइट्रोजन की कमी थी, वहीं आज कई आवश्यक तत्वों की कमी हो जाने के कारण मृदा की सेहत एवं उर्वरता खराब हो गयी और उसकी फसलों की टिकाऊ खेती करने के लिए पोषक तत्वों की आपूर्ति करने की क्षमता भी घट गयी।

**तालिका–1. हमारे देश में पोषक तत्वों का घटता संतुलन पोषक तत्व:**

**कुल संतुलन (000 टन)**

**शुद्ध संतुलन (000 टन)**

| पोषक तत्व | कुल आपूर्ति | निष्कासन | संतुलन | कुल आपूर्ति | निष्कासन | संतुलन |
|---|---|---|---|---|---|---|
| नाइट्रोजन | 10,983 | 9,613 | 1310 | 5,461 | 7,690 | –2,229 |
| फास्फोरस | 4,188 | 3,702 | 486 | 1,466 | 2,961 | –1,496 |
| पोटेशियम | 1,454 | 11,657 | –10,202 | 1,018 | 6,994 | –5,976 |
| कुल | 16,565 | 24,9741 | –8,406 | 7,945 | 17,645 | –9,701 |

पोषक तत्वों में एक की भी कमी हो गयी तो फसल उत्पादन सार्थक रुप से घट जायेगा। पौधों को तीन आवश्यक तत्व कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन हवा व जल से प्राप्त होते रहते हैं। इनको मृदा में अलग से डालने की जरुरत नहीं होती है। अन्य 14 में से 6 पोषक तत्त्व नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, गंधक, जिंक एवं आयरन की कमी मृदा में देखने को मिल रही है। देश के अनेक क्षेत्रों में इनकी अत्यधिक कमी हो चुकी है। शेष 8 पोषक तत्व (कैल्शियम, मैग्नीशियम, कॉपर, क्लोरीन, मैंगनीज, बोरोन, मोलिब्डेनम एवं निकिल) की उपलब्धता की कोई खास समस्या नहीं पायी गयी। मृदा में आवश्यक पोषक तत्व की कमी होने से फसल में इन तत्वों की कमी के लक्षण प्रत्यक्ष रुप से बड़े पैमाने पर दिखाई देने लगते हैं और फसल उत्पादन में गिरावट अथवा ठहराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः हमें टिकाऊ खेती करने से पहले मृदा उर्वरता में हो रही गिरावट के निम्नलिखित कारणों को संक्षित रूप में जानने की जरूरत है।

## मृदा उर्वरता में हो रही गिरावट के कारण:

- **पोषक तत्वों का दोहन–** हमारे देश में किसानों द्वारा फसल सघनीकरण से फसलें मृदा से पोषक तत्वों की बहुत बड़ी मात्रा का दोहन करती हैं। किसान इनकी आपूर्ति रासायनिक उर्वरको के द्वारा करता है, लेकिन किसान बिना मृदा परीक्षण के ही उर्वरकों का अपर्याप्त एवं असंतुलित प्रयोग करता है, जिसके परिणामस्वरुप मृदा की उर्वरता तथा उर्वरकों की उपयोग क्षमता दिनों दिन घट रही है।
- **मृदा में पोषक तत्वों का बिगड़ता संतुलन–** हमारे देश में प्रमुख पोषक तत्वों की स्थिति के बारे में जानकारी तालिका–1 में दी गई है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय कृषि 97 लाख टन नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटेशियम की कमी के नकारात्मक संतुलन की मार झेल रही है। इस 97 लाख टन की पोषक तत्वों की मात्रा में 59 लाख टन हिस्सा केवल पोटेशियम का है। नाइट्रोजन की कमी 22 लाख टन और

फास्फोरस की 19 लाख टन है। इस तालिका से साफ है कि जितनी मात्रा में नाइट्रोजन और फास्फोरस का प्रयोग किया जाना चाहिए उतनी मात्रा में नाइट्रोजन और फास्फोरस की पूर्ति करने में भी असमर्थ रहे है। साथ हीं गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग न के बराबर है। इन्हीं कारणों से ही मृदा में पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ता जा रहा है।

- **मृदा क्षरण–** मृदा की उपरी सतह जैव पदार्थ एवं पोषक तत्वों से भरपूर होती है और अधिकांश पौधे पोषक तत्वों की आवश्यकता भी इस सतह से करते हैं। वनों की कटाई, अत्यधिक पशु–चराई एवं अवैज्ञानिक मृदा प्रबधंन आदि से उपरी सतह से जल एवं वायु द्वारा मृदा क्षरण होने से जैव पदार्थ एवं पोषक तत्वों की एक बड़ी मात्रा का नुकसान हो जाता है। जिससे मृदा की उर्वरता में सार्थक कमी आ गयी।
- **मृदा की खराब भौतिक दशा–** धान की फसल में पड़लिगं करने से मृदा की संरचना बिगड़ती है, जिससे मृदा उर्वरता एवं फसल उत्पादन में कमी आती है।
- जैविक क्रियाशीलता में कमी– वर्तमान में किये जा रहे एकल पद्धति फसल चक्र सघनीकरण तथा फसल अवशेषों को खेतों में जलाने से मृदा में जैव पदार्थों की कमी अनुभव की जा रही है। जिससे मृदा की गुणवत्ता में कमी आयी है। घटते जैव पदार्थों के कारण मृदा में मौजूद लाभकारी सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता में भी कमी आ जाती है। ये सूक्ष्मजीव मृदा की सेहत में सुधार करते हैं।
- **समस्याग्रस्त मुदा–** इन मृदाओं में अम्लीकरण, क्षारीयकरण और लवणीकरण के कारण विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है। अम्लीय मृदा में लौह तत्व की विषाक्ता हो जाती है, जबकि क्षारीय मृदा में इसकी कमी आ जाती है। इसी प्रकार क्षारीय मृदा में फास्फोरस तत्व की उपलब्धता में कमी आ जाती है। साथ ही मृदा उर्वरता में गिरावट आती है।
- **कृषि विविधता का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव–** मौजूदा समय में की जा रही धान और गेहूँ की अधिक उपज देने वाली किस्मों के प्रचलन के बाद भारतीय कृषि की विविधता गायब होती जा रही है। कृषि–विविधता दो स्तरों पर कम हुई है, एक तो मोटे अनाज, दालों और तिलहन के फसल–चक की जगह गेहूँ और धान के मोनोकल्चर आ गए हैं तथा दूसरा गेहूँ और धान की फसलें भी बहुत संकीर्ण आधार पर ली गई हैं, जिससे पोषक तत्वों का दोहन बहुत अधिक मात्रा में होता है। हरित क्रान्ति की शुरुआत से आज तक मिट्टी की उर्वरता में निश्चित रुप से काफी कमी हुयी है।

**तालिका 2: सूक्ष्म–पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के लिए मृदा अनुप्रयोग और पर्णीय छिड़काव:**

| उर्वरक | मृदा अनुप्रयोग (कि.ग्रा./हेक्टेयर) | पर्णीय छिड़काव/हेक्टेयर |
|---|---|---|
| जिंक सल्फेट | 15–25 | 5 कि.ग्रा, जिंक सल्फेट–1000 लीटर पानी |
| फेरस सल्फेट | 60–150 (मृदा अनुप्रयोग अधिक उपयोगी नहीं हैं।) | 10 कि.ग्रा फेरस सल्फेट–1000 लीटर पानी |
| मैंगनीज सल्फेट | 25 | 5 कि.ग्रा. मैंगनीज सल्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. बुझा चूना. 1000 लीटर पानी |
| बौरैक्स | 5–10 | 1 कि.ग्रा. बोरेक्स 1000 लीटर पानी |
| सोडियम मौलिबडेट | 1–2 | 10 कि.ग्रा. सौडियम मोलिबडेट 100 लीटर पानी |

## मृदा उर्वरता कैसे बढ़ाएं:

उपरोक्त बिंदुओ से स्पष्ट हो जाता है कि मृदा उर्वरता में गिरावट के अनेक कारण हैं। मृदा उर्वरता में सुधार लाने के लिए निम्न बिंदुओ के तहत चर्चा की जा रही है। खाद्य सुरक्षा बढ़ाने के लिए मृदा की उर्वरता में सुधार लाना परम् आवश्यक है।

- **संतुलित पोषक तत्व–** पोषक तत्वों की मात्रा, मृदा परीक्षण के अधार पर प्रयोग करनी चाहिए। पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा न केवल कम व निम्न गुणवत्ता का उत्पादन देती है, बल्कि मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों के भंडार का भी अत्यधिक दोहन करती है। जिन तत्वों को माँग से अधिक मात्रा में डाला जाता है उनकी सम्पूर्ण मात्रा पौधे द्वारा अवशोषित नहीं हो पाती है। साथ ही कुछ पोषक तत्वों (लौह, जिंक, कापर) की अधिक मात्रा के प्रयोग से पौधों में विशाक्ता हो सकती है। इस प्रकार असंतुलित पोषण प्रबंधन सीमित संसाधनों का दुरुपयोग है। भारत में हुए अनेक दीर्घकालीन प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के लिए संतुलित पोषण श्रेष्ठतम विकल्प है। एक पौषक तत्व की अत्यधिक मात्रा में उपस्थित अन्य तत्त्व के अवशोषण को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए फास्फोरस व पोटेशियम उर्वरक की अनुपस्थिति में पौधों की नाइट्रोजन के प्रति अनुक्रिया कम होती रहती है। नाइट्रोजन के साथ यदि फास्फोरस एवं पोटेशियम की उपयुक्त मात्रा का प्रयोग किया जाए तो फसल के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है तथा पोटाश डालने से उसे और अधिकतम स्तर तक पहुंचाया जा सकता है। साथ ही गंधक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाए। गंधक प्रबंधन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

**तालिका 3: दलहनी हरी खाद फसलों को नाइट्रोजन स्थिरीकरण (यौगिकीकरण) में योगदान :**

| फसल का नाम | उगाने की ऋतु | हरे पदार्थ की औसत उपज (टन/हेक्टेयर) | हरे पदार्थ में नाइट्रोजन (प्रतिशत) | मृदा में नाइट्रोजन का योगदान (किग्रा.हेक्टेयर) |
|---|---|---|---|---|
| **ढेचा** | खरीफ, जायद | 15 | 0.45 | 77 |
| **मूंग** | खरीफ, जायद | 5 | 0.53 | 40 |
| **लोबिया** | खरीफ, जायद | 12 | 0.50 | 56 |
| **ग्वार** | खरीफ, जायद | 14 | 0.35 | 62 |
| **बरसीम** | रबी | 10 | 0.43 | 60 |

भारत में गहन खेती के प्रचलित होने के साथ एक तत्व की अधिक मात्रा वाले उर्वरक को अधिक उपयोग में लिया जाता है, जिनमें गंधक का स्तर या तो बहुत निम्न होता है अथवा शून्य होता है। इसी कारणवश भारत की अधिकांश उपजाऊ भूमियों में इसकी कमी देखी गई है। गंधक के साथ अन्य सूक्ष्म तत्वों की भी कमी स्पष्ट दिखाई देनी लगी है। पौधों में वृद्धि तथा उत्पादन को कम करने के लिए जिम्मेदार सूक्ष्म तत्वों में वर्तमान समय में जस्ता अत्यधिक महत्वपूर्ण है जो विस्तृत रूप से सभी गहन कृषि वाले क्षेत्रों में आवश्यक स्तर से कम है। भारत के सभी धान–गेहूँ वाले क्षेत्रों में जस्ते की उपयुक्त मात्रा डालने से उत्पादन में दर्शनीय वृद्धि देखी गई है। सूक्ष्म–पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के लिए सूक्ष्म–पोषक तत्वों को मिट्टी में डालकर अथवा पर्णीय छिड़काव द्वारा दूर किया जा सकता है (तालिका 3)। संतुलित पोषण प्रबंधन से न केवल उत्पादन में वृद्धि होती है, अपितु पोषक तत्व उपयोग क्षमता व जल उपयोग क्षमता को भी बढ़ाया जा सकता है जो अंततः कृषि के लाभ को बढ़ाता है। इसलिए फसलोत्पादन से अधिकतम लाभ लेने के लिए सभी 17 आवश्यक पोषक तत्व पौधों को संतुलित मात्रा में । उपलब्ध होने चाहिए। अतः स्पष्ट हो जाता है कि टिकाऊ खेती के लिए पौधों की उचित वृद्धि के लिए । सभी आवश्यक तत्वों का पर्याप्त मात्रा एवं सही अनुपात में होना अनिवार्य है।

- **समेकित पोषक तत्व प्रबंधन–** इस पादप पौषण तकनीकी के तहत कें जैविक स्रोतो का रासायनिक उर्वरकों के साथ संयोजित कर उपयोग कर मृदा की उर्वरता को सुधारा जाता है। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में उपयोग होने मुख्य घटकों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है।
  - **जैविक खाद–** जैविक खाद का उपयोग किसान प्राचीनकाल से करते आ रहे हैं। परन्तु अधिक पैदावार देने वाली फसल की किस्म के लिए अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होने के कारण जैविक खाद पर निर्भर न रहकर रसायनिक उर्वरकों को मुख्य रूप से प्रयोग में लाते हैं। उर्वरकों के लगातार प्रयोग, मृदा व पर्यावरण के लिए हानिकारक है। जैविक खाद न केवल पोषक तत्वों की पूर्ति करती है अपितु मृदा की भौतिक, जैविक तथा रासायनिक गुणवता को भी बढ़ाती हैं। भारत में गोबर की खाद, विभिन्न प्रकार की कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, बायोगैस स्लरी, खलियां, मुर्गी, भेड़ अथवा बकरी से प्राप्त खाद एवं हरी खाद मुख्य रुप से प्रयोग में आने वाले जैविक खाद के स्त्रोत हैं। खेत में हरी खाद के लिए मुख्य रूप से दलहनी फसलें उगाकर मृदा की उर्वरता में सुधार लाया जाना चाहिए। हरी खाद की फसलों में ढैंचा, सन, लोबिया तथा ज्वार इत्यादि मुख्य हैं। कुछ महत्वपूर्ण हरी खाद फसलों से प्राप्त हरे पदार्थ की मात्रा एवं नाइट्रोजन की उपलब्धता को तालिका 3 में प्रस्तुत किया गया है।
  - **फसल अवशेष–** गेहूँ के अवशेष कपास के डण्ठल, गन्ने की सूखी पत्तियाँ तथा धान का भूसा इत्यादि की बड़ी मात्रा उपलब्ध है। अनुसंधानो से यह सिद्ध हुआ है कि गेहूँ व धान को भूसे के साथ 25 किग्रा. नाइट्रोजन हेक्टेयर या फली वाली फसल का भूसा डालने से मृदा की उर्वरता पर अवश्य धनात्मक प्रभाव होता है।
  - **प्रेसमड व फ्लाई एश–** भारत में वर्ष भर में भारी मात्रा में प्रेसमड, शीरा एवं बैगस (खोई) का चीनी मिलों से उत्पादन होता है जिनमें लोहा, जिंक, कैल्शियम तथा मैंग्नीज उपस्थित होता है। प्रेसमड का सूक्ष्म जीव से विघटन करने के पश्चात् खेत में प्रयोग करने से मृदा के रासायनिक, भौतिक व जैविक गुणों में सुधार होता है। प्रेसमड व फ्लाई एश को भूमि सुधारक के रुप में प्रयोग करके समस्याग्रस्त एवं सामान्य मृदाओं की उर्वरता में भी सुधार लाया जा सकता है।
  - **जैव–उर्वरक–** यह उर्वरक वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण, मृदा में उपस्थित फास्फोरस व अन्य पोषक तत्वों को पौधों के लिए उपलब्धता बढ़ाकर मृदा की उर्वरता एवं स्वास्थ्य को ठीक रखते हैं। उदाहरण के लिए फली वाली फसलों में राइजोबियम का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है।
  - **रासायनिक उर्वरक–** आधुनिक कृषि में खाद्यन्न उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। रसायनिक उर्वरकों का मृदा उर्वरता पर धनात्मक प्रभाव इस संदर्भ में लिया जा सकता है कि इनके प्रयोग से मरुस्थलीकरण कम हुआ जैव विविधता बढ़ी, पोषक तत्वों के दोहन में कमी और वनों की कटाई में कमी हुई है। फसलों में रासायनिक उवर्रकों का प्रयोग वैज्ञानिक

तरीके से करना चाहिए। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम के लिए क्रमशः यूरिया, डीएपी और म्यूरेट ऑफ पोटाश उर्वरक का प्रयोग किया जाता है। गंधक के प्रमुख स्रोत गंधक तत्व, जिप्सम एवं आयरन पाइराइटस हैं। जिंक व आयरन की कमी को दूर करने के लिए क्रमशः जिंक सल्फेट व आयरन सल्फेट का प्रयोग किया जाता है। फास्फोरस एवं पोटाशधारी उर्वरकों का प्रयोग प्रायः बुआई के समय तथा नाइट्रोजनधारी उर्वरकों (यूरिया व अमोनियम सल्फेट) खाद्यान्न फसलों में, एक बार की बजाय दो या तीन बार करना अधिक उपयोगी रहता है।

कृषि से जुड़े सभी संस्थानों का कर्तव्य बनता है कि किसानों को टिकाऊ खेती के लिए उपयुक्त सभी संसाधनो के प्रति जागरुक करके और मृदा उर्वरता को बनाये रखना आज के समय की जरुरत है। क्योंकि इस मृदा से अधिक से अधिक खाद्यान्न उत्पादन भी लेना है। यदि इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया तो आने वाले समय में खाद्य सुरक्षा को संधारित करना असान नहीं होगा।

# कृषि आतंकवाद (Agroterorrism)

**प्रीनू जायसवाल**
कृषि सस्य विज्ञान, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

आतंकवाद नाम सुनते ही सभी की रूह कांप जाती है भारत सहित विश्व के अनेक देश आतंकवादियों से परेशान हैं। देश की सीमा पर तैनात सुरक्षा बलों की आंखों में धूल झोंक कर यह देश में घुसकर तबाही मचाते हैं और मौका पाकर या तो बच निकलने में सफल हो जाते हैं या मारे जाते हैं। इन आतंकवादियों के आतंक से आप सभी भली–भांति परिचित होंगे। यहां मेरा उद्देश्य उपरोक्त आतंकवादियों की तरह ही कृषि आतंकवादियों से है जो देश के अन्नदेवता (किसान) को आतंकित करते रहते हैं। इन दोनों प्रकार के आतंकवादियों से मुकाबले के लिए सीमा पर जवान व खेत में किसान मुस्तैद रहते हुए भी देश को भारी क्षति होती है। साथियों कृषि आतंकवाद एक नया शब्द लग रहा होगा लेकिन वास्तव में यह नया नहीं है। कृषि आतंकवाद का अर्थ उन सभी कीट एवं रोग कारकों से है जो किसी बड़े क्षेत्र में किसी फसल, दूध, सब्जी मांस के उत्पादन में कमी करते हैं या विभिन्न उत्पादों को संक्रमित कर देते हैं जिससे वह उपभोग योग्य नहीं रहते। भारत में प्रतिवर्ष 25 से 30 प्रतिशत कृषि उत्पाद इस आतंकवाद की भेंट चढ़ जाता है। इस क्षति को कम करने के लिए किसानों के साथ कृषि वैज्ञानिक, कीटनाशक बनाने वाली कंपनियां एवं भारत सरकार कंधे से कंधा मिलाकर कार्यरत हैं।

## कृषि आतंकवाद की जड़ः

प्रकृति अनेक तत्वों का सम्मिश्रण है, जैसे जीव–जंतु, पेड़–पौधे, सूक्ष्मजीव, मिट्टी, जल, वायु, अग्नि, अंतरिक्ष आदि। जीवन के सुचारू रूप से चलने के लिए इन सभी तत्वों का एक निश्चित अनुपात में होना आवश्यक है, जिसके लिए वैदिक काल में लोग प्रकृति की पूजा करते थे, जिससे कृषि आतंकवाद नगण्य था। जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि हुई वैसे–वैसे मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ती गई। इन बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मनुष्य ने प्रकृति का अन्यायपूर्ण दोहन करना प्रारंभ कर दिया। कृषि आतंकवाद की जड़ें विस्तृत एवं गहरी फैल चुकी हैं। जिसके निम्न कारण हैं, जैसे जंगलों की अत्यधिक कटाई, भूमिगत जल का आवश्यकता से अधिक दोहन, जीवाश्मों (कोयला, डीजल, पेट्रोल, तरल पेट्रोलियम गैस आदि) के अत्यधिक उपयोग से प्रकृति का संतुलन खराब हो चुका है। इन प्राकृतिक संसाधनों के अन्याय पूर्ण दोहन के अलावा अधिक कमाई की प्रतिस्पर्धा के चलते अनेक विस्तृत लक्ष्य वाले कीटनाशकों की खोज एवं उनके अत्यधिक उपयोग से कीट एवं रोग कारकों में उत्परिवर्तन से नई एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने वाली प्रजातियों का उद्भव होना एक प्रकृतिजय नियम है। जीव–जंतुओं और पेड़–पौधों के सड़े कार्बनिक पदार्थ का स्थान स्वादवर्धक रासायनिक उर्वरकों ने ले लिया है। अनेक कीट एवं रोग कारकों के प्राकृतिक शत्रुओं (गिद्ध, मेंढक, सांप, घरेलू चिड़िया, बर्र, ततैया आदि) का कम होना या पूर्ण रूप से नष्ट हो जाना भी मनुष्य के स्वार्थ का परिणाम है। रोग एवं कीट अवरोधी किस्मों का विकास भी कृषि आतंकवाद में कम सहभागी नहीं है। कहते हैं "आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है" उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए गुणवत्तायुक्त उत्पादन के स्थान पर गुणात्मक उत्पादन की होड़ में किए गए नए–नए अनुसंधान कृषि आतंकवाद की मूल बन चुक हैं।

कृषि आतंकवादीः

यूं तो जब से कृषि प्रारंभ हुई है, तभी से अनेक कृषि आतंकवादी भी पनपना प्रारंभ हो गए थे, लेकिन उस समय तक किसान इनके बारे में नहीं जानता था, जैसे यूनान में अक्सर किट्ट रोग (पक्सीनिया, ग्रैमिनिस) से गेहूं की फसल नष्ट हो जाती थी। लोग इस रोग को उनके द्वारा किए गए पापों का फल मानते थे और इसके लिए रॉबीगस नामक देवता की पूजा करते थे। यह कृषि आतंकवादी पूरे विश्व में गेहूं की फसल को नष्ट करता रहा है। यह अदृश्य आतंकवादी मध्य भारत में सन 1827 में सबसे पहले देखा गया। सन 1907 में एवं सन् 1947 में इसी आतंकवादी से मध्य भारत में अकाल पड़ा। सन् 1957 में यह बिहार में देखा गया। सन् 1971–72 एवं 1972–73 में इसने भारत के उत्तर पश्चिम भाग में तबाही फैलाई, जिससे लगभग 15 लाख टन गेहूँ की क्षति हुई। सन् 1916 में संयुक्त राज्य अमेरिका एवं कनाडा में भी इससे आर्थिक आपदा उत्पन्न हुई। सन् 1935 एवं 1937 में भी संयुक्त राज्य अमेरिका में महामारी फैली। सन् 1845 में फाइटोथ्योरा, इनफैस्टैन्स कवक ने आयरलैंड में आलू की फसल को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया, जिसके फलस्वरूप आयरलैंड में अकाल के कारण 10 लाख लोगों की मृत्यु हुई और लगभग 10लाख लोग आयरलैंड छोड़कर दूसरे देशों में चले गए। एक अन्य कवक आतंकवादी (हैमिलिया, वास्टाटिक्स) ने 1970 के दशक के प्रारंभ में श्रीलंका में कॉफी उत्पादन समाप्त कर दिया, जिससे किसानों को चाय की खेती करने के लिए मजबूर होना पड़ा। सन् 1878 एवं 1882 के मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका से आए हुए प्लाज्मोपारा, विटीकोला नामक कवक आतंकवादी ने फ्रांस में वाइन इंडस्ट्री को तबाह कर दिया। भारत वर्ष में सन् 1942 में बंगाल में कवक आतंकवादी (हैल्मिन्थोस्पोरियम, औराइजी) द्वारा धान की फसल नष्ट हो जाने से लाखों लोग भूख के कारण अकाल मृत्यु के शिकार हुए, जिसे दुनिया का सबसे बड़ा अकाल कहा गया। एक अन्य कवक आतंकवादी (ग्लोमोरेला, टुकूमैनेन्सिस) का आतंक सन् 1939 में उत्तर भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब में देखा गया, जिससे देश की सफेद पट्टी कहे जाने वाले इन प्रदेशों में गन्ना की फसल बर्बाद हुई। कुछ कृषि आतंकवादी दूसरे देशों से आकर हमारे देश में स्थापित हो गए, जैसे लैंटाना सन् 1809 में मध्य अमेरिका से, सेंट जॉन स्कल 1879 में चीन से, आलू का कंद मौथ 1900 में इटली से, इरविनिया एमाइलोवोरा 1940 में इंग्लैंड से, सिनकाइटियम एंडोबायोटिकम 1952 में होलैंड से, औरहैटेरोडेरा रोस्टोकाइनैन्सिस 1960 में पश्चिमी यूरोप से। एक बहुत ही खतरनाक कृषि आतंकवादी "टिड्डी" के बारे में शायद हमारे बुजुर्ग किसान अच्छी प्रकार परिचित

होंगे। आज से लगभग 45 वर्ष पूर्व तक इस आतंकवादी के कारण फसल ही नहीं बल्कि सारी वनस्पति समाप्त हो जाती थी। दिसंबर 2019 से जनवरी 2020 तक इस आतंकवादी ने राजस्थान एवं गुजरात के कुछ जिलों में 370000 हेक्टेयर खड़ी फसल नष्ट कर दी। भारत इस आतंकवादी का पता लगाने के लिए विशेष ड्रोन व यंत्र खरीद रहा है। भारत एवं पाकिस्तान दोनों के कृषि कीट विशेषज्ञों ने इस वर्ष जून माह से इसके द्वारा बड़े हमले की साजिश का पता लगाया है।

वर्तमान समय में भारतवर्ष के अनेक सस्य जलवायुवीय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कृषि आतंकवादी किसानों को आतंकित कर रहे हैं, जिससे किसान खेती करने से विमुख होते जा रहे हैं, जैसे सफेद मक्खी, एवं माहूं। ये कृषि के ऐसे आतंकवादी हैं जो खुद तो फसलों का रस चूसकर क्षति पहुंचाते ही हैं अपितु दूसरे कृषि आतंकवादियों को अपने शरीर में शरण देकर छिपाते भी हैं। और उन्हें दूसरे पौधों, खेतों, तथा क्षेत्रों तक पहुंचाते भी हैं। इन विषाणु आतंकवादियों से पिछले 3–4 वर्षों से मध्यप्रदेश में बाबा रोग के कारण सोयाबीन, मूंग, उड़द, भिंडी आदि फसलों में महामारी उत्पन्न हो चुकी है। अन्य कृषि आतंकवादी जैसे बैगन का तना एवं फल भेदक, चना का फल भेदक, गोभी में तम्बाकू की इल्ली, जैसिड (हरातेला), सरसों का माहूं, लाल मकड़ी, कद्दू वर्गीय फल मक्खी, जड़ ग्रन्थि सूत्रक्रमि, दलहनी फसलों का उखटा (फ्यूजेरियम राइजोक्टोनिया आदि) खेती में आतंक का पर्याय बन चुके हैं।

### कृषि आतंकवादियों के छिपने के स्थानः

जिस प्रकार आतंकवादी घने जंगलों, पहाड़ों की कंदराओं, शरण देने वालों के घर अथवा भेष बदलकर समाज के बीच में छुपे रहते हैं उसी प्रकार यह कृषि आतंकवादी भी निम्न प्रकार से छुपे रहते हैं।

- खेत में एकवर्षीय एवं बहुवर्षीय खरपतवारों पर।
- मिट्टी, फसल अवशेष, कटाई के बाद जड़ों एवं ठूंठों में जैसे उखटा, जड़ गलन उत्पन्न करने वाले कवक एवं जीवाणु, जड़ ग्रंथि सूत्रक्रमि, तना एवं फल छेदक, धान का जीवाणु झुलसा, झोंका, ब्लाइट लीफ स्पॉट कवक आदि।
- अनेक कृषि आतंकवादी बीजों के अंदर या सतह पर छुपे रहते हैं, जैसे कंडवा कवक, दलहनी फसलों का पीला मोजेक विषाणु, बंट कवक, एंथ्रेक्नोज उत्पन्न करने वाले कवक, गन्ना व आलू में लगने वाले सभी रोगों के रोग कारक आदि।
- अनेक कृषि आतंकवादी खेत की मेड़, रास्ते, सड़क, नदी, नह, नाले व रेलवे लाइन के किनारों पर उगे बहुवर्षीय झाड़ियों पर प्रतिकूल मौसम में छुपे रहते हैं, जैसे दलहनी फसलों का पीला मोजेक, पपीता, टमाटर मिर्च आदि का पर्णकुंचन, भिंडी का पीतसिरा विषाणु आदि महकुआ पौधे पर छुपे रहते हैं।
- कृषि आतंकवादी प्रतिकूल मौसम में कीट पतंगों के शरीर में छिपे रहते हैं और जब येकट पौधों को खाते या उनका रस चूसते हैं तो ये आतंकवादी पौधों में प्रवेश कर जाते हैं जैसे जैमिनी विषणु सफेद मक्खी के अंदर, कद्दू वर्गीय फसलों में जीवाणु उखटा के लिए जिम्मेदार इरवीनियां ट्राइकोफिला आतंकवादी कुकुम्बर बीटल में, अंगूर का फैनलीफ सूत्रक्रमि, राइस टुंग्रो प्लांट हॉपर में छिपे रहते हैं।
- भोज्य पदार्थों (जैम–जेली, अचार–मुरब्बा, सब्जी आदि) को नष्ट करने वाले आतंकवादी, म्यूकर एवं राइजोपस (ब्रैडमोल्ड), गोदामों में क्षति पहुंचाने वाले जैसे एस्परजिलस व पेनिसिलियम (ब्लैक ब्लू मोल्ड) आदि कृषि आतंकवादी हवा में रहते हैं। गोदामों में अनाजों को नष्ट करने वाले आतंकवादी जैसे राइस वीविल, दालों का घुन, फ्लोर बीटल आदि दीवारों एवं फर्श की दरारों व बोरियों में छुपे रहते हैं।

### कैसे बढ़ रहा है कृषि आतंकवादः

जिस प्रकार किसी देश की सीमा पर सीमा प्रहरियों की निगरानी में कमी से आतंकवादी घुस कर न केवल खुद आतंक फैलाते हैं, बल्कि अपनी संख्या में वृद्धि भी करते हैं, उसी प्रकार कृषि आतंकवाद के बढ़ने का बड़ा कारण कृषक की निगरानी में कमी एवं चूक एक बड़ा कारण है। इसके अलावा कई अन्य कारण कृषि आतंकवाद को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैंजैसे–

- फसल विशेष एवं अचानक मौसम में परिवर्तन के अनुसार मुख्य कीट एवं रोग की चौकसी में कमी।
- खेत, फसल एवं प्रजाति चयन में कमी।
- खरपतवार प्रबंधन में कमी।
- खेत व खेत के आसपास सफाई की कमी।
- घनी फसल बोना (प्रति इकाई क्षेत्रफल में पौधों की संख्या पर ध्यान न देना)
- असंतुलित उर्वरकों का उपयोग (नत्रजन उर्वरक अधिक मात्रा में तथा पोटाश उर्वरकों का कम मात्रा में उपयोग करना।
- मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों का ध्यान न देना।
- कार्बनिक एवं हरी खाद का कम उपयोग करना।
- एक ही फसल एवं प्रजाति का बार–बार व बड़े क्षेत्र में बोना।
- फसल चक्र न अपनाना।
- कृषि आतंकवादियों के प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या में कमी होना।
- संकर एवं अधिक उपज वाली किस्मों का अधिक बोना।
- बहुलक्षय कीटनाशकों, फफूंदीनाशक आदि का उपयोग।
- जंगलों का अन्यायपूर्ण व अत्यधिक दोहन।
- गर्मियों में गहरी जुताई न करना।
- फसल अवशेषों में आग लगाना।
- प्राइवेट बीज, कीटनाशक एवं उर्वरक आदि कंपनियों द्वारा अधिकतम उत्पादों को बेचकर अधिकतम लाभ कमाने की प्रवृत्ति।
- सरकार द्वारा टिकाऊ कृषि योजनाओं की कमी।
- विविधीकरण की कमी।
- कृषि आदानों व कृषि यंत्रों की अप्रत्याशित मूल्य वृद्धि एवं कृषि उत्पादों की कीमतें आदानों की कीमतों की तुलना में

कम होना।
- कृषि श्रमिकों की कमी।
- जलवायु परिवर्तन।

**कैसे बचें कृषि आतंकवाद सेः**

- सभी प्रकार के कृषि आतंकवादियों से बचने के लिए फसल व खेत में सतत् निगरानी रखें। इसके लिए फैरोमोन ट्रेप और यलो स्टिकी टेप, ब्लू स्टिकी टैप को कीट आतंकवादियों की निगरानी के लिए उपयोग करें।
- कुछ अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादी जैसे किट्टू/रतुआ कवक, पछेती झुलसा कवक, डाउनी मिल्ड्यू कवक, कद्दू वर्गीय फसलों का उखटा जीवाणु, राइस ट्युंग्रो विषाणु, सफेद मक्खी आदि मौसम में अचानक परिवर्तन एवं फसल की विशेष अवस्था पर तेजी से आक्रमण करते हैं। इसलिए ऐसे कृषि आतंकवादियों की चौकसी करते रहना आवश्यक है। इनका संक्रमण या संख्या आर्थिक क्षति स्तर से ऊपर पहुंचते ही प्रबंधन उपाय अपनाना प्रारंभ कर देना चाहिए।
- यदि संभव हो तो यांत्रिक विधि से खरपतवार प्रबंधन करें ।
- खेत की मेड़ और रास्तों को खरपतवारों से मुक्त रखें जिससे इन आतंकवादियों को छुपने की जगह न मिल सके।
- प्रति इकाई क्षेत्रफल में पौधों की आदर्श संख्या रखें एवं घनी फसल लगाने से बचें।
- संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करें तथा पोटाश एवं सल्फर युक्त उर्वरकों का उपयोग बढ़ाएं।
- कार्बनिक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट तथा हरी खाद का उपयोग अवश्य करें।
- प्रत्येक एक वर्ष के अंतराल पर गर्मियों में गहरी जुताई अवश्य करें।
- फसल चक्र अपनाएं एवं खेतों में ऊँची– ऊँची मेंड़ बंदी करें जिससे वर्षा का जल एक से दूसरे खेतों में न जा सके।
- कृषि आतंकवादियों के प्राकृतिक शत्रु जैसे बर्र, ततैया ,ड्रैगनफ्लाई, लेडीबर्ड बीटल, घरेलू चिड़िया, बुलबुल, मैना आदि के आवास नष्ट न करें इनको सुरक्षित रखें।
- विविधीकरण में देशी/परम्परागत किस्मों का भी समावेश करें।
- जैव कीटनाशी व जैवफफूंदनाशियों का उपयोग करें। रासायनिक कीटनाशकों व फफूंदी नाशकों के उपयोग से बचें।
- बहुलक्षीय कीटनाशकों व फफूंद नाशियों के उपयोग से बचें। कीट विशेष या रोग विशेष के लिए संस्तुत कीटनाशकों व फफूंदीनाशक की उचित मात्रा का उपयोग शुक्ल पक्ष में करें।
- कृषि विशेषज्ञ एवं प्रशासनिक अधिकारियों की पूर्व अनुमति के बिना फसल अवशेषों को आग ना लगाएं। यह दंडनीय अपराध है।
- देशी बबूल, इमली, सहजन, अमलतास, पीपल, बरगद, आदि पेड़ों को खेत की मेड़ पर खाली स्थानों पर लगाएं।
- स्वस्थ व प्रमाणित बीज बोएं
- अपना बीज खुद तैयार करें तथा बाजार पर निर्भर न रहें।
- ईमानदार व कर्तव्यनिष्ठ बनें सरकार पर निर्भर न रहें।
- गुणात्मक उत्पादन की बजाय गुणवत्ता युक्त उत्पादन पर ध्यान दें।
- स्वस्थ पौधे से ही स्वस्थ उत्पाद मिलेगा और स्वस्थ उत्पाद को खाने वाला ही स्वस्थ रहेगा। इसलिए मृदा को स्वस्थ रखें और वह आपको स्वस्थ रखेगी ।

**"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"**

# सफेद मक्खी एवं उससे होनेवाले रोगों से बचाव

**डॉ. डूमर सिंह**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

प्रकृति कभी भी विशुद्ध रूप में नहीं हो सकती अर्थात किसी भी जीव का पृथ्वी पर विशद्ध रूप में जीवन संभव नहीं है पारिस्थितिकी तंत्र में पौधे उत्पादक हैं जो सौर विकिरण को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं जिन पर शेष सभी जीव उपभोक्ता के रूप में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्भर रहते हैं इन जीवों का एक बड़ा समूह आर्थोपोडा है जिसमें सभी कीट आते हैं ये कीट भी दो प्रकार के हैं एक हैं प्राथमिक उपभोक्ता अर्थात जो अपने पोषण के लिए प्रत्यक्ष रूप से पेड़ पौधों पर निर्भर रहते हैं और दूसरे वे जो इन प्राथमिक उपभोक्ता कीटों पर अपने पोषण के लिए निर्भर रहते हैं। प्राथमिक उपभोक्ता फसलों के लिए हानिकारक होते हैं, जबकि द्वितीयक उपभोक्ता कीट फसलों के लिए लाभदायक अर्थात् किसान के मित्र होते हैं। आज मैं इस लेख में ऐसे प्राथमिक उपभोक्ता के बारे में चर्चा कर रहा हूं जो विगत कई दशकों से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हमारी फसलों एवं अन्न देवता (किसान) को अत्यधिक हानि पहुंचाता आ रहा है।

सफेद मक्खी (*Bemicia tabaci*), होमोप्टैरा गण के एलीरोयडिडी परिवार का सदस्य है। लगभग 100 वर्ष पूर्व इसे ग्रीस में तम्बाकू की फसल में देखा गया। सन् 1889 ई० में ग्रीस देश में इसे सबसे पहले कपास फसल का पीड़क माना गया। भारत में सर्वप्रथम सन् 1905 ई० में इसे पूसा (बिहार) में कपास की फसल में देखा गया एक बहुभक्षी कीट है जो 500 से अधिक पादप प्रजातियों पर अपना पोषण करता है। वर्तमान समय में यह लगभग सभी प्रकार की फसलों (सब्जियों, दलहन, तिलहन, रेशा, खाद्यान्न आदि) में क्षति पहुंचा रहा है। विश्व में इसकी 1550 से भी अधिक प्रजातियां हैं, इनमें से कुछ ही (लगभग 50) प्रजातियां कृषि महत्व की हैं। यह पौधों की पत्तियों की निचली सतह से रस चूसता है। इसके चुभाने एवं चूसने वाले मुखांग होते हैं। पौधों से रस चूसने के कारण उनकी वानस्पतिक वृद्धि, प्रजनन एवं उपज कम होने के साथ–साथ कृषि उत्पादों की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। इसके अलावा यह अनेक प्रकार की विषाणु बीमारियां भी फसलों में उत्पन्न करता है।

## क्षति प्रकृतिः

सफेद मक्खी फसलों को तीन प्रकार से क्षति पहुंचाती हैं एक प्रत्यक्ष रूप से पत्तियों एवं पौधों के मुलायम भागों का रस चूसकर, दूसरा यह अपने शरीर से मीठा तरल छोड़ती है जिस पर सूटीमोल्ड (कवक) का संक्रमण हो जाता है। तीसरा, यह परोक्ष रूप से अपने मुखांगों द्वारा अनेक प्रकार के विषाणु जनित रोगों को स्वस्थ पौधों तक पहुंचाती है। इसके निम्फ एवं वयस्क पत्तियों की निचली सतह एवं पौधों के कोमल भागों में अपने मुखांगों को चुभाकर फ्लोएम चालनी नलिकाओं से रस चूसते हैं, जिससे पत्तियां पीली पड़ जाती है और पौधा कमजोर हो जाता है अधिक आक्रमण की दशा में पौधे की शाखाएं ऊपर से मरने लगती हैं, फल छोटे एवं निम्न गुणवत्ता वाले रह जाते हैं। क्योंकि यह मीठा तरल भी अपने शरीर से पौधों की सतह पर छोड़ती है जिससे सूटीमोल्ड (कवक) के वायुजनित बीजाणु अंकुरित होकर पौधे की सतह को घेर लेते हैं जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया धीमी हो जाने से पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती हैं। इसके अलावा यह बेगेमो (जैमिनी) विषाणु जनित रोगों जैसे– मिर्च, टमाटर, पपीता में पर्णकुंचन रोग (लीफकर्ल), भिंडी का पीतशिरा, दलहनी फसलों का पीला मोजैक व गोल्डन यलो मोजैक (बाबा रोग) आदि को एक पौधे से दूसरे पौधे, एक खेत से दूसरे खेत तथा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में फैलाती हैं। इस प्रकार के सहसंबंध से फसलों में क्षति की तीव्रता बढ़ जाती है।

**जीवन चक्र–** सफेद मक्खी के जीवन चक्र की तीन अवस्थाएं होती हैं– अंडा, निम्फ एवं वयस्क। अनुकूल पर्यावरणीय अवस्थाओं एवं भोजन की उपलब्धता के आधार पर इसका पूरा जीवन चक्र 28 से 30 दिन का होता है इस प्रकार वर्ष में 11– 15 संततियां पैदा होती हैं।

**अंडा–** मादा पत्ती की निचली सतह पर गोल घेरे में अंडे देती है अंडे नाशपाती के आकार के डंठल युक्त एवं लगभग 0.2 मिमी. व्यास के होते हैं ये 30° सें० पर 5 –9 दिन में पक जाते हैं और उनसे प्रथम इंस्टार (अपनी जगह पर घूमते हुए) अंडाकार, चपटे और पत्रकनुमा होते हैं प्रारंभ में अंडों का रंग हल्का पीला होता है लेकिन हैचिंग के समय यह भूरे रंग के होते हैं 20 डिग्री सेंटीग्रेट से कम तथा 30 डिग्री सेंटीग्रेट से अधिक तापमान पर हैचिंग दर कम हो जाती है।

**निम्फ–** निम्फ चपटे, अनियमित, अण्डाकार लगभग 0.7 मिमी. लम्बे, अग्रभाग की ओर लम्बी, तिकोनी नलिकानुमा मुंह के होते हैं। केवल प्रथम इंस्टार ही निम्फ अवस्था होती है जो गतिशील होते हैं। अण्डे से निकलने के बाद ये अण्डे के आसपास ही भोजन की तलाश में गति करते हैं इसके बाद इनकी टांगें लुप्त हो जाती हैं और ये एक इल्लीनुमा अवस्था में रूपांतरित हो जाते हैं और अपनी निम्फ अवस्था में ही गतिहीन रहते हैं। चौथी अवस्था को रेड आई निम्फ अवस्था

कहते हैं क्योंकि निम्फ अवस्था से वयस्क अवस्था तक पहुँचने तक इनकी बड़ी बड़ी आंखें ही दिखाई देती हैं। इस बीच ये एक स्थान पर बिना गति किए पौधे से रस चूसते रहते हैं।

**वयस्क–** निम्फ अवस्था के बाद (चौथी अवस्था) इनके पैर व पंख पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं और इनकी लंबाई लगभग 1 मिमी. होती है नर मादा से कुछ छोटे होते हैं, इनके शरीर एवं दोनों जोड़ी पंख एक सफेद हल्के पीले पाउडर व चिकने स्राव से ढ़क जाते हैं। नर वयस्क का जीवन चक्र अपेक्षाकृत छोटा (9 –17 दिन का) होता है जबकि मादा वयस्क सफेद मक्खी का जीवनकाल पर्यावरणीय अनुकूल अवस्थाओं में 60 दिन तक बढ़ सकता है एक मादा अपने संपूर्ण जीवन काल में 300 – 400 अंडे देती है अंडे देते समय मादा के मुखांग पत्ती में घुसे रहते हैं और पीछे के भाग को एक वृत्त के रूप में घुमाती हुई अंडे देती है जिससे अंडे एक वृत्ताकार श्रृंखला में दिखाई देते हैं वयस्क सफेद मक्खी तिकौने आकार की होती है।

पर्यावरणीय कारक (तापमान, प्रकाश, आद्रता) सफेद मक्खी की संख्या को प्रभावित करते हैं जैसे अधिक प्रकाश तीव्रता एवं लंबे दिन (गर्मियों में) निम्फ अवस्था 20 दिन तक रहती है और इसी अवस्था में हैचिंग प्रतिशत भी अधिक होती है मानसून ऋतु में हल्की वर्षा, अधिक तापमान एवं बादलों युक्त आकाश सफेद मक्खी के प्रजनन के लिए अनुकूलतम देखा गया है विंध्यांचल क्षेत्र में अप्रैल से सितंबर माह में इनकी संख्या एवं आक्रमण सर्वाधिक होता है। वैसे मध्य मार्च से नवंबर माह तक इसके आक्रमण से फसलों को अत्यधिक क्षति होती है।

## सफेद मक्खी द्वारा स्थानांतरित/प्रसारित विषाणु रोगः

जैसा कि प्रारंभ में वर्णित किया जा चुका है कि सफेद मक्खी परोक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से दो प्रकार से क्षति पहुंचाती है एक तो इसके द्वारा मधुर तरल पर सूटी मोल्ड आकर्षित होकर फसल को क्षति होती है और दूसरी सबसे बड़ी क्षति इसके द्वारा प्रसारित विषाणु रोगों से होती है जो निम्नलिखित हैं––

**टमाटर का पीला पर्ण कुंचन रोग (Tomato Yellow Leaf Curl)-** टमाटर का यह रोग विश्व भर में एक महामारी के रूप में व्याप्त है इस रोग के कारण शीत ऋतु की देशी टमाटर की प्रजातियाँ लगभग उगना बंद हो गईं हैं अनेक प्राइवेट बीज कंपनियों ने इस रोग के प्रति सहनशील/शंकर प्रजातियां विकसित की हैं जिनके बीज की कीमत लघु एवं सीमांत कृषकों की पहुंच से दूर हैं। दूसरे इन सहनशील संकर प्रजातियों के टमाटर का स्वाद भी देशी टमाटर के स्वाद जैसा नहीं है।

**रोग के लक्षण–** संक्रमित पौधे बौने रह जाते हैं और उनकी पत्तियां भी छोटी एवं सीधी रहती हैं रोगी पौधे की पत्तियां ऊपर की ओर मुड़कर उनके किनारे अंदर की ओर मुड़ जाते हैं पत्तियाँ चमड़ेनुमा, कुरकुरी और पीली हो जाती हैं रोगी पौधा हल्के हरे रंग का अधिक शाखाओं युक्त हो जाता है, परिणाम स्वरूप झाड़ी नुमा हो जाता है। ऐसे पौधों पर फूल तो बनते हैं लेकिन वह पीले पड़कर गिर जाते हैं जिससे फल नहीं बनते।

**भिंडी का पीतशिरा रोग (Yellow Vein Mosaic of Okra)–** यह रोग भारत में भिंडी की फसल के लिए काफी नुकसानदायक है यह रोग भी सर्वव्यापी रोग है।

**रोग के लक्षण–**यह रोग पौधे की नई पत्तियों से प्रारंभ होता है। नई पत्तियों की शिराएँ पीली हो जाती हैं जिससे पत्तियों में एक पीला जाल जैसा दिखाई देता है। अधिक संक्रमण की अवस्था में पूरी पत्तियां पीली हो जाती हैं और अंत में सफेद होने लगती हैं। पौधे की लंबाई कम हो जाती है तथा ऐसे पौधों पर फल भी पीले रंग के, कम लंबे एवं कम संख्या में बनते हैं पीले फलों का बाजार मूल्य शून्य हो जाता है।

**दलहनों का सामान्य पीला मोजेक रोग (Beans Common Yellow Mosaic)–** यह रोग सर्वव्यापी रोग है जिससे सोयाबीन, मूंग, उड़द, बाकला, सेम आदि फसलों को भारी क्षति पहुंचता है। इस रोग के कारण पिछले तीन–चार वर्षो से मध्य प्रदेश में सोयाबीन, उड़दव मूंग का उत्पादन नगण्य हो चुका है और एक महामारी का रूप ले चुका है क्योंकि मध्य प्रदेश दाल उत्पादन में अग्रणी प्रदेश है इसलिए इन लोगों का महत्व मध्यप्रदेश के लिए और भी अधिक है।

**रोग के लक्षण–** बुबाई के लगभग 30 से 40 दिन बाद पौधे की नई पत्तियों पर हरे पीले रंग के धब्बे बनना प्रारंभ होते हैं और शीघ्र ही पूरी पत्तियां पीली हो जाती हैं नई बनने वाली पत्तियां भी पीली निकलती हैं रोगी पौधे पर फल भी पीले हो जाते हैं तथा फलियों में दाने पिचके हुए, विकृत एवं छोटे रह जाते हैं। अत्यधिक संक्रमण की दशा में फलियां बांझ रह जाती हैं रोगी पौधे में अधिक शाखाएं निकलने से पूरा पौधा झाड़ीनुमा हो जाता है। इस रोग से पिछले 3–4 वर्षों से मध्यप्रदेश में सोयाबीन, उड़द व मूंग का उत्पादन 80 से 100 तक कम हुआ है।

**पपीता का पर्णकुंचन रोग (Papaya Leaf Curl)–**

**रोग के लक्षण–** संक्रमित पपीता की नई पत्तियों के किनारे ऊपर या नीचे की ओर मुड़ जाते हैं और उनमें सिलवटें पड़ने से पत्तियां विकृत हो जाती हैं। ऐसी पतियों की नीचे की ओर की शिराएं स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। मुड़ी हुई या सिलवटदार पत्तियों को यदि सीधा करें तो

वह फट जाती हैं। रोगी पत्तियां सामान्य पतियों की अपेक्षा अधिक हरे रंग की मोटी (चमड़ेनुमा) एवं कुरकुरी हो जाती हैं। अत्यधिक संक्रमण की दशा में ऊपर की सारी पत्तियां नीचे और अंदर की ओर मुड़कर उल्टे कप सदृश्य हो जाती हैं। पत्तियों के डंठल टेढ़े मेढ़े मुड़ जाते हैं, पौधे पर फूल और फल नहीं बनते। पूरे पौधे की लंबाई कम रह जाती है।

**टमाटर का पर्णकुंचन रोग (Tomato Leaf Curl)–**

**रोग के लक्षण–** टमाटर के रोगी पौधे की पत्तियां सिकुड़ी हुई, घुमावदार और नीचे की ओर मुड़ जाती है। पत्तियों की निचली सतह की शिराएँ स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। पौधे में अधिक शाखाएं निकलने से पौधा झाड़ीनुमा एवं बोना रह जाता है। रोगी पौधे पर फूल पीले पड़कर गिर जाते हैं जिससे फल नहीं बनते इस रोग से 100 तक उपज प्रभावित होती है।

**मिर्च का पर्णकुंचन रोग (Chilli Leaf Curl)–**

**रोग के लक्षण–** मिर्च के विषाणु संक्रमत पौधे की ऊपर की पत्तियां मध्य शिरा की ओर मुड़ जाती हैं यह मुड़े हुए किनारे फिर से अंदर की ओर मुड़ जाते हैं। पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है। पौधे की पर्वों की लंबाई कम होने से पौधा बोना रह जाता है। शाखाएं अधिक निकलती हैं और ऊपर की ओर गुच्छेदार हो जाता है। फूल अर्ध विकसित अवस्था में ही पीले पड़कर गिर जाते हैं ऐसे रोगी पौधों पर फल नहीं बनते जिससे किसान को अत्यधिक क्षति होती है।

**सफेद मक्खी एवं बेगोमोवाइरसैज का सहसंबंध (Interaction between Whitefly and Begomoviruses)**

बेगोमोवाइरस जैमिनीविरिडी परिवार की एक जाति है इसके दो कण एक साथ जुड़े रहते हैं। इनका आकार 25 – 30 X 15 – 20 नैनोमीटर होता है। इनमें वृत्ताकार एकल सूत्रकीडी– ऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल (ssDNA) पाया जाता है इनको सबसे छोटे विषाणु भी कहा गया है ये विषाणु फसलों में रोगी पौधे से स्वस्थ पौधों में सफेद मक्खी (वाहक) द्वारा फैलते हैं। इस वाहक (सफेद मक्खी) के चुभाने एवं चूसने वाले मुखांग होते हैं। यह वाहक, पौधे के फ्लोएम रस पर पोषण करता है। विषाणु का वाहक के शरीर के विभिन्न भागों में पहुंचने का क्रम निम्न प्रकार है– स्टाइलट (मुखांग) ––– ईसोफैगस ––– पाचन तंत्र (मध्यांत्र) ––– छननकक्ष––– पेरीट्राफिक झिल्ली द्वारा हीमोलिम्फ––– लार ग्रंथि–––लारनलिका––– लार। इस प्रकार यह विषाणु वाहक से शरीर के विभिन्न अंगों में घूमता हुआ फिर से वापस लार में आ जाता है इसलिए बेगोमोवाइरस को सर्कुलेटिव (Cerculative) विषाणु कहा जाता है। वाहक द्वारा रोगी पौधे की पत्ती की निचली सतह पर पहुंचकर अपने स्टाइलट (मुखांगों) का संपर्क फ्लोएम से कराने में लगभग 2 मिनट का समय लगता है उसके बाद वह फ्लोएम रस को चुसता है जिसमें असंख्य विषाणु कण भी होते हैं और यह रस ईसोफैगस में होता हुआ मध्यांत्र तक पहुंचता है जिसमें वाहक को कम से कम 15 – 30 मिनट का समय लगता है। इस समय अवधि को विषाणु ग्रहण अवधि (Acquisition Access Period, AAP) कहते हैं। यही प्रक्रिया वाहक द्वारा ग्रहण किए गए विषाणुओं को स्वस्थ पौधों में पहुंचाने की होती है (Inoculation Access Period] IAP) उसमें भी कम से कम 15 – 30 मिनट का समय लगता है। इन दोनों अवधियों में अलग–अलग अधिकतम 12 – 48 घंटे लगते हैं। वाहक द्वारा विषाणु ग्रहण किए जाने के बाद विषाणुकण इसोफगस से होते हुए मध्यांत्र (Midgut) में पहुंचते हैं जिसमें अनेक सूक्ष्मांकुर (Microvilli) होते हैं। विषाणुकण इन सूक्ष्मांकुरों द्वारा रोक लिए जाते हैं। इस प्रकार ये सूक्ष्मांकुर बेगोमोवाइरसैज को रोकने के प्राथमिक स्थान हैं या लंबे समय तक भंडारण स्थान भी हैं। एक बार की विषाणु ग्रहण अवधि (AAP) में वाहक द्वारा 60 करोड़ विषाणु कण ग्रहण कर लिए जाते हैं। यहां से ये विषाणु कण पेरीट्रॉफिक झिल्ली द्वारा हीमोलिम्फ में पहुंच जाते हैं। वाहक के इस हीमोलिम्फ में एक सहजीवी जीवाणु पाया जाता है जो इन विषाणु कणों को सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होता है। इस प्रक्रिया में कम से कम 30 मिनट का समय लगता है। अब ये विषाणु कण हीमोलिम्फ से लार ग्रंथि तक पहुंचते हैं, जिसमें कम से कम 5.5 घंटों का समय लगता है। इस प्रकार वाहक द्वारा विषाणु ग्रहण करने से लार ग्रंथि तक पहुंचने में लगभग 7 घंटे लगते हैं। इस बीच विरुलीफैरस (Virulifarous) वाहक (सफेदमक्खी) विषाणुओं को स्वस्थ पौधे पर पोषण करने के बाद भी स्थानांतरित नहीं कर सकते। इस अवधि को लेटेंट पीरियड (Letant Period) कहते हैं,जो सफेद मक्खी में कम से कम 7 घंटे होता है और पर्यावरणीय परिस्थितियों एवं वाहक की सक्रियता के अनुसार अधिक भी हो सकता है लार ग्रंथियों से विषाणु कण लार नलिका द्वारा लार में पहुंच जाते हैं जो स्वस्थ पौधे में पोषण द्वारा पौधों के फ्लोएम रस में पहुंचा दिए जाते हैं जहां इन विषाणुकणों का पौधों की कोशिकाओं में गुणन (Replication) होता है जिससे पौधों में रोग के लक्षण प्रकट होते हैं।

यह वाहक (सफेदमक्खी) विषाणुओं को कई सप्ताह तक या पूरे जीवन भर अपने शरीर में रख सकते हैं। सफेद मक्खी की उड़ने वाली अवस्था (वयस्क) विषाणुओं को सबसे अधिक फैलाती हैं। यद्यपि निम्फ में भी विषाणुकण होते हैं लेकिन वह उड़ न पाने के कारण विषाणुओं को नहीं फैला पाते। 24 घंटे की विषाणु ग्रहण अवधि (AAP) के बाद केवल एक वयस्क कीट ही स्वस्थ पौधों को प्रभावी

रूप से संक्रमित करने में सक्षम होता है। यद्यपि 5–15 कीटों में विषाणु को 100% स्थानांतरित करने की क्षमता होती है और लगातार 8 घंटे तक विषाणु को स्थानांतरित करते रहते हैं। वयस्क मादा नर की अपेक्षा इन विषाणुओं को फैलाने में अधिक सक्षम होती हैं। नर व मादा के संभोग से भी यह विषाणु एक दूसरे में पहुंच जाते हैं और स्वस्थ पौधों को संक्रमित कर सकते हैं। बेगोमोवाइरसैज अपने वाहक (सफेद मक्खी) के शरीर में गुणन नहीं करते। वाहक द्वारा विषाणु ग्रहण अवधि (AAP) और संवेदनशील पौधे में पहुंचाने की अवधि (IAP) अलग अलग अधिकतम 12 –48 घंटे होती है।

**सफेद मक्खी एवं उससे जनित रोगों का प्रबंधनः**

- सफेद मक्खी एवं रोग विरोधी फसल एवं प्रजाति का चयन करें।
- जिस फसल में सफेद मक्खी जनित रोग का संक्रमण हो उस फसल के बीजों को बीज के रूप में उपयोग न करें क्योंकि बेगोमोवायरस बीज जनित भी हैं।
- फसल चक्र अपनाएं एवं फसल की निगरानी रखें।
- रोगी पौधों को उखाड़कर जला दें।
- रोपाई द्वारा लगाई जाने वाली फसलों (टमाटर, बैंगन, मिर्च आदि) की पौध पॉलीहाउस अथवा लो टनल पॉलीहाउस में तैयार करें।
- फसल उगने से वानस्पतिक वृद्धि तक उपलब्ध प्राकृतिक साधनों (नीम का तेल, नीम की पत्तियों का अर्क, पार्थेनियम फूलों का पाउडर आदि) से सफेद मक्खी को नियंत्रित करते रहें।
- लगातार एक ही कीटनाशक का उपयोग न करें।
- यदि सिंचाई की सुविधा हो तो सोयाबीन, उड़द, मूंग, भिंडी आदि की बुवाई जून के प्रथम सप्ताह तक सुनिश्चित करें।
- नत्रजन वाले उर्वरक कम एवं पोटाश उर्वरकों का अधिक उपयोग करें।
- घनी फसल बोने से बचें अर्थात पौधे से पौधों एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी संस्तुत दूरी से 15 से 25 अधिक रखें।
- नकली कीटनाशक एवं कीटनाशक की कम मात्रा का उपयोग न करें।
- निम्नलिखित कीटनाशकों का प्रति एकड़ छिड़काव फसल उगने के बाद से ही करें।

  एसीटामिप्रिड 50% एस. पी. 20–30 ग्राम, क्लोथेनिडिन 20% डब्ल्यूडीजी 80–100 ग्राम, थायोमिथोक्साम 25% डब्ल्यूजी 40–50 ग्राम, पाइरोपींस (इंसैलिस, एफीडोपाइरोपीन) सेफीना, बीएएसएफ 400 मिली.।

**विशेषः–** फसल में विषाणु रोगों के लक्षण दिखाई देने के बाद किसी कीटनाशक या फफूंदीनाशक से इन्हें नियंत्रित नहीं किया जा सकता इसलिए कीटनाशक विक्रेता अथवा किसी अन्य के बहकावे में न आएं।

# मृदा सुधार के क्षेत्र में नैनो प्रौद्योगिकी का महत्व

**डॉ. नीरज वर्मा**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

## नैनोटेक्नोलॉजी–मृदा सुधार के नए रास्ते

विकासशील देशों में नैनो प्रौद्योगिकी ऊर्जा, पर्यावरण, स्वास्थ्य एवं कृषि से संबंधित अन्य क्षेत्रों में क्रांतिकारी तकनीक के रूप में उभर रही है। नैनो प्रौद्योगिकी किसी तकनीक को नैनो पैमाने पर दर्शाती है जिसका विभिन्न क्षेत्रों में अलग–2 महत्व होता है। जब किसी पदार्थ का आकार 1/100 नैनोमीटर के बीच में होता है तो उसे नैनो कणों के रूप में जाना जाता है। किसी भी पदार्थ के गुण नैनो पैमाने पर उसके असली स्वरूप से बिल्कुल भिन्न होते है, इन्हीं गुणों के कारण, नैनो कणों ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नए रास्ते खोल दिए हैं। यह प्रौद्योगिकी 21वीं सदी में हमारी अर्थव्यवस्था और समाज पर गहरा प्रभाव उत्पन्न कर रही है। दवा, रसायन विज्ञान, पर्यावरण, ऊर्जा, सूचना एवं संचार, भारी उद्योग और उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्रों के अलावा इस प्रौद्योगिकी ने मृदा एवं जल के सुधार में भी कई प्रकार की भूमिका निभाई है। यद्यपि नैनो शब्द एक नया शब्द प्रतीत होता है लेकिन यह क्षेत्र पूरी तरह से नया नहीं है। जब से धरती पर जीवन का प्रारम्भ हुआ तभी से निरंतर 3.8 अरब वर्षों से विकास के माध्यम से प्रकृति में परिवर्तन हो रहा है। प्रकृति में ऐसी कई सामग्री, वस्तुएँ एवं प्रक्रियाएँ हैं जो बड़े से लेकर नैनो पैमाने तक कार्य करते हैं।

नैनो कणों के बारे में कुछ तथ्य नैनो कणों की संश्लेषण प्रक्रियाएँ आम तौर पर दो सिद्धांतों पर काम करती हैं–

- ऊपर से नीचे (टॉप–डाउन) विधि
- नीचे से ऊपर (बॉटम–अप) विधि

पहली विधि प्रगति की उन प्रक्रियाओं से संबंधित है जो एक बड़ी आधारभूत/बुनियादी इकाई को छोटी तथा विशेष नैनो कणों का संश्लेषण दृष्टिकोण और उनके सतह क्षेत्र में घटित बदलाव को दर्शाया गया है

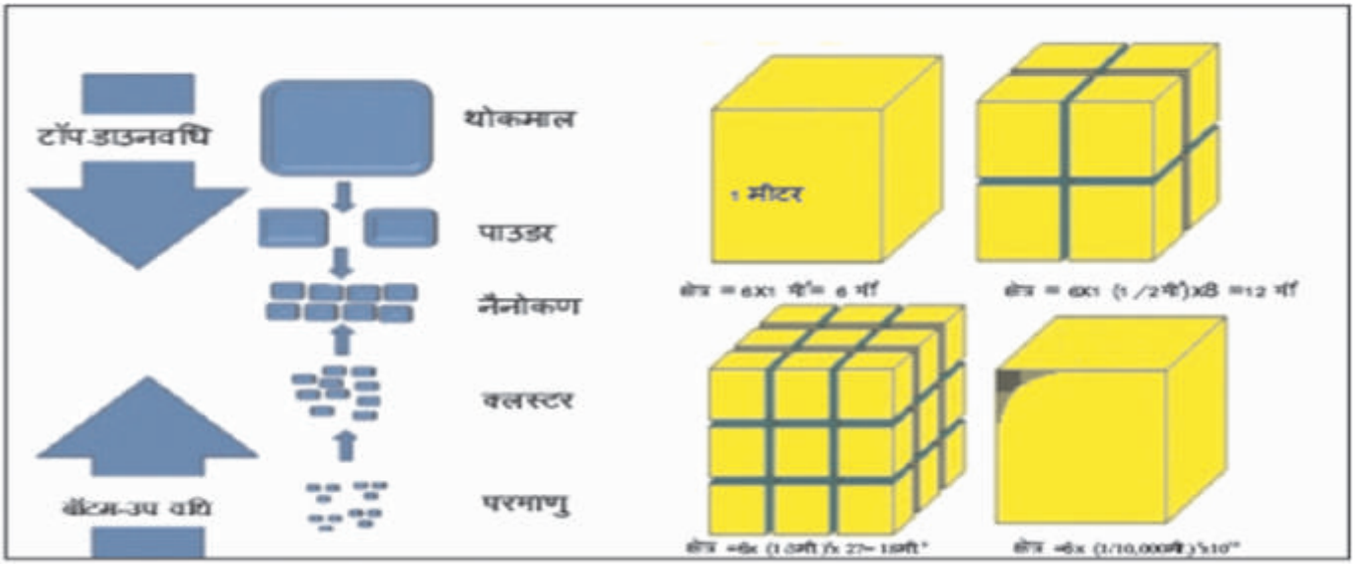


नैनो इकाईयों में रूपांतरित करती है। जबकि दूसरी विधि नैनो कण निर्माण के उस दृष्टिकोण पर आधारित है जिसमें नैनो पैमाने पर बुनियादी इकाईयाँ रासायनिक या भौतिक बल के उपयोग से इकट्ठा होकर एक व्यापक ढाँचे की संरचना करती है।

## नैनो कणों का मृदा सुधार में उपयोग

दूषित मृदा सुधार के लिए अनेक प्रकार की जाँच एवं शोध कोर्य किए गए हैं। नैनो प्रौद्योगिकी की एक विशेष प्रासंगिकता यह है कि इसमें नैनो कृणों को दूषित मृदा में डाल दिया जाता है। इससे रासायनिक प्रक्रियाएँ उत्पन्न होती है जो प्रायः प्रतिक्रियाशीलता एवं अवशोषण

सिद्धांत पर कार्य करती हैं जिसके फलस्वरूप मृदा में विद्यमान विषाक्त तत्व अत्यंत अघुलनशील होकर पौधे को हानि नहीं पहुँचा पाते हैं।

**तालिका – मृदा सुधार के लिए प्रयुक्त नैनो कण**

| संश्लेषित नैनो कण | उपयोग |
|---|---|
| **शून्य संयोजनयुक्त (वैलेंट) नैनो कण** | क्रोमियम स्थिरीकरण |
| **लैकेट संशोधित शून्य वैलेंट नैनो कण** | पेंटाक्लोरोफिनोल के डिहेलोजिनेशन व डाईनाइट्रोटोल्यूएंस में |
| **स्टार्च स्थिर चुंबकीय नैनो कण** | आर्सेनेट का स्थिरीकरण |
| **शून्य वैलेंट नैनो कण और लैडध्आयरन** | पॉलीक्लोरीनेटेड बाइफिनाइल की हाइड्रोडिक्लोरीनेशन में |
| **शून्य वैलेंटैनो कण** | इबुप्रोफेन की गिरावट |
| **शून्य वैलेंट नैनो कण और कैल्शियम ऑक्साइड** | पोलीक्लोरोनेटेड डाइबेनजेनो पी–डाईआक्साइन एंड डाइ बेंजोफुरनास |
| **एपेटाइट नैनो कण** | लेड स्थिरीकरण |
| **शून्य वैलेंट नैनो कण** | डीडीटी की गिरावट |
| **पोलीसेकराइड स्थिर फेरस–मैंगनीज ऑक्साइड नैनो कण** | सेंनिक II का स्थिरीकरण |

मृदा सुधार के लिए पारंपरिक संसाधनों का प्रयोग करने की बजाय नैनो सामग्री का प्रयोग अधिक लाभकारी है, छोटा आकार तथा अत्यधिक विशिष्ट सतह क्षेत्र होने के कारण नैनो कणों का मृदा में वितरण काफी सरल है जिसके फलस्वरूप इनकी रासायनिक प्रतिक्रिया दर बढ़ जाती है। जो मृदा सुधार के लिए उच्च क्षमता तथा उच्च दर को दर्शाता है। छोटा आकार स्थानिक (इनसीटू) प्रयोग में आसान तथा वितरण के लिए फायदेमंद है। मृदा सुधार के लिए अच्छी क्षमता वाले कुछ नैनो कण जैसे जियोलाइट्स, सल्फाइड इत्यादि का प्रयोग शामिल है। इनका उपयोग एवं विस्तारपूर्वक विश्लेषण निम्नानुसार हैः

**जियोलाइट्सः**

जियोलाइट्स क्रिस्टलीय क्षार (सोडियम या पोटेशियम) और पृथ्वी के क्षारीय धनायनों (कैल्शियम या मैग्नीशियम) के हाइड्रेटेड अलुमिनो सिलिकेट होते हैं। संरचना में किसी बड़े परिवर्तन के बगैर इनकी जलीय/निर्जलीकरण तथा जलीय विलयन में अपने घटक धनायनों के आदान–प्रदान करने की क्षमता होती है। कृषि क्षेत्र में इन जियोलाइट्स को दूषित मृदा के लिए मृदा कंडीशनर,उर्वरक और सुधारक के रुप में प्रयोग किया जा सकता है।

सूखे की समस्या को सुधारने के लिए जियोलाइट्स मिट्टी में एक बाती (केपिलरी) सामग्री के रूप में कार्य करता है और उथले भूजल को पौधे की जड़ क्षेत्र तक पहुँचाता है तथा पौधों की वर्षा या सिंचाई पर निर्भरता को कम करने में सहायता करता है। जियोलाइट्स को मिट्टी में मिलाने से इसकी धनायन विनियम क्षमता और पीएच मान में वृद्धि दर्ज की गई है जिससे मिट्टी की पोषक तत्वों को धारण करने की क्षमता बढी है। रेतीली मिट्टी में 10 प्रतिशत सी.जी.दृ1 जिओलाइट के प्रयोग से धनायन विनियम क्षमता में 0.08 से 15.59 सी.मोल.सी./कि.ग्रा. और पीएच मान में 5.4–6.6 की वृद्धि आंकी गई।

**नैनो उर्वरकः**

जियोलाइट्स वर्धित उर्वरकों के अलावा कुछ ऐसे और भी नैनो कणों को खोजा गया है जो उर्वरक के रूप में उपयोगी है। नैनो प्रौद्योगिकी के उपलब्ध विकल्पों में से एक कृषि क्षेत्र में उर्वरक विकास के लिए सिफारिश है जिससे दुनिया की बढ़ती आबादी को खिलाने के लिए फसल उत्पादन में वृद्धि हो सके। जियोलाइट्स को कृषि के क्षेत्र में नाईट्रोजन उर्वरकों के निक्षालन से होने वाले नुकसान एवं पौधों में अमोनिया विषाक्तता को कम करने तथा कृषि पैदावार बढ़ाने के लिए प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जा सकता है। जबकि अम्लीय मृदा पर जियोलाइट के 10 प्रतिशत प्रयोग का वर्षा के सतही प्रवाह तथा मृदा अपरदन से होने वाले नुकसान का परीक्षणों में मृदा स्थिरता तथा भौतिक दशा में सुधार पाया

गया है।अतः नैनो कणों से सतही अप्रवाह तथा अपरदन से होने वाला मृदा नुकसान को कम किया जा सकता है।

**शून्य वैलेंस आयरनः**

नैनो पैमाने पर शून्य वैलेंस आयरन तकनीक 1990 के दशक में शुरू हुई। तब इस तकनीक को विषाक्त हैलोजीनेटेड हाइड्रोकार्बन यौगिकों और अन्य पैट्रोलियम किया गया था क्योंकि गैस टैंक रिसाव में कार्बनिक विलायक फैलाव के माध्यम से भूजल वातावरण में प्रवेश करते हैं। ये धात्विक आयरन के नैनो कण अत्यधिक सक्षम रेडुसिंग एजेंट के रूप में काम करते हैं और ये स्थिर जैविक प्रदूषक को नष्ट करके सौम्य यौगिकों में परिवर्तित करने में सक्षम है। इस प्रकार के नैनो कण क्लोरीनयुक्त मीथेन, क्लोरीनयुक्त बैंजीन, कीटनाशक, पॉलीक्लोरीनेटेड बाइफिनाइल और नाइट्रो–एरोमैटिक यौगिक आदि प्रदूषकों के नुकसान को कम करने में सक्षम होते हैं।

**आयरन ऑक्साइड के नैनो कणः**

आयरन/लौह मिट्टी का एक महत्वपूर्ण घटक है जो पौधों और जानवरों के लिए आवश्यक पोषक तत्व के रूप में पृथ्वी में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तत्वों में चौथे स्थान पर विद्यमान है। आयरन ऑक्साइड मृदा में प्रायः नैनो क्रिस्टल के रूप में पाया जाता है जिसका व्यास (5–100 नैनो मी.)है। इसकी सतह विभिन्न प्रकार के अकार्बनिक और कार्बनिक अवयवों को अवशोषित करने में क्रियाशील होती है। विषाक्त पदार्थो के प्रति प्रमुख अवशोषण क्षमता और पर्यावरण के प्रति अनुकूल विशेषताओं के कारण, आयरन ऑक्साइड नैनो कणों के कई रूपों का निर्माण किया गया है तथा मिट्टी और पानी के सुधार के लिए स्थानिक अनुप्रयोगों में सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है। इन नैनो कणों को दूषित मृदा में कम कीमत पर पम्प द्वारा या सीधे तौर पर फैला सकते हैं क्योंकि इनसे द्वितीय प्रदूषण का खतरा नहीं होता है। औद्यौगिक अवशिष्ट पदार्थ जिनमें आयरन ऑक्साइड प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं उन्हें आजकल मृदा में धातु स्थिरीकरण के लिए प्रयोग किया जा रहा है। जलीय माध्यम में किए गए शोध कार्यों से यह ज्ञात हुआ है कि आयरन ऑक्साइड नैनों कण मृदा में मौजूद हानिकारक एवं विषाक्त भारी धातु कणों की उपलब्धता एवं चालकता को अवशाषण सिद्धांत द्वारा कम कर देता है। आयरन नैनो कणों में नैनो–हैमेटाइट एवं नैनो–मैग्नेटाइट की अवशोषण क्षमता एक समान होती है।

**फॉस्फेट आधारित नैनो कणः**

फॉस्फेट आधारित नैनो कण, शून्य वैलेंट आयरन और आयरन ऑक्साइड नैनो कणों से अलग है। ये भारी धातु द्वारा दूषित मृदा का सुधार अत्यधिक अघुलनशील और स्थिर फॉस्फेट यौगिकों के गठन द्वारा करते हैं। इसका एक विशिष्ट उदाहरण लैड (पारा) से विषाक्त मृदा सुधार का है। एक शोध कार्य के परिणामों में दर्शाया गया है कि नैनो कणों के प्रयोग द्वारा तीन प्रकार की मृदा (कैल्शियम युक्त, उदासीन और अम्लीय) में सीसा के निक्षालन और पादप उपलब्धता में प्रभावी रूप से कमी होती है ।

**आयरन सल्फाइड नैनो कणः**

फॉस्फेट आधारित नैनो कणों द्वारा भारी धातु स्थिरीकरण के समान ही सल्फाइड आधारित नैनो कण द्वारा मिट्टी और पानी में पारा और आर्सेनिक को खत्म करने के लिए विशेष शोध किए गए हैं। जलभराव की स्थिति वाली एवं भारी धातुओं से विषाक्त मृदा में रेडुसड सल्फर ऑक्साइड का प्रयोग किया जाता है जिसमें रेडुसड सल्फर स्थिरीकरण या सिंक के रूप में कार्य करता है तथा मृदा में विद्यमान धातु के साथ रासायनिक अभिक्रिया द्वारा अत्यधिक अघुलनशील धातु के सल्फाइड बनाकर मृदा सुधार करता है।

**निष्कर्षः**

नैनो कणों द्वारा मृदा सुधार पर किए गए सभी शोध कायों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह प्रौद्योगिकी पारंपरिक संसाधनों को प्रयोग करने की बजाय ज्यादा लाभकारी है द्य आकार छोटा होने के कारण मृदा में आसान वितरण द्वारा मृदा सुधार की दर में भी वृद्धि दर्ज की गई है। अतः आने वाले समय में प्रदूषित जल एवं मृदा सुधार के लिए यह तकनीक कारगर साबित होगी ।

# स्वयं सहायता समूह – महिला सशक्तिकरण का एक प्रमुख माध्यम

**सात्विक सहाय बिसारिया**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

**परिचयः**

बांग्लादेश में 1970 के दशक के दौरान गरीब और समाज के निम्न तबके के लोगों के जीवन में आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु 'स्वयं सहायता समूह' की अवधारणा को 'बांग्लादेश ग्रामीण बैंक' के रूप में जीवंत रूप प्रदान करने वाले नोबल पुरस्कार विजेता प्रो. मोहम्मद यूनुस का योगदान अविस्मरणीय है। आज भी 'स्वयं सहायता समूह' बहुत प्रासंगिक है। इन समूहों के माध्यम से सभी सदस्य अपनी सामूहिक बचत निधि से जरूरतमंद सदस्य को न्यूनतम ब्याज दर पर ऋण प्रदान करते हैं जिससे वह सदस्य स्थानीय आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से आजीविका उपार्जन हेतु अपनी उद्यमशीलता को आकार प्रदान करता है।

विकासशील देशों के लिए स्वयं सहायता समूह जमीनी–स्तर पर जनसामान्य के आर्थिक सशक्तिकरण का एक प्रमुख माध्यम है। वहीं दूसरी ओर इस अवधारणा को न केवल सामान्य लोगों द्वारा अपनाया जाता है बल्कि दुनिया भर की सरकारी व गैर–सरकारी संस्थाएँ भी स्वयं सहायता समूह के महत्त्व को बखूबी समझती हैं।

भारत में आर्थिक उदारीकरण (1991–92) के दौरान स्वयं सहायता समूहों को विशेष प्रोत्साहन दिया गया तथा इस प्रक्रिया में नाबार्ड की भूमिका प्रमुख रही। वहीं भारत की नौंवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) के दौरान स्वयं सहायता समूहों को जमीनी–स्तर पर विकासात्मक योजनाओं के कार्यान्वयन में उपयोग में लाया गया।

**स्वयं सहायता समूह का लक्ष्यः**

- गरीब लोगों के बीच नेतृत्व क्षमता का विकास करना।
- स्कूली शिक्षा में योगदान करना।
- पोषण में सुधार करना।
- जन्म दर में नियंत्रण करना।

कई स्वयं सहायता समूह नाबार्ड की सेल्फ हेल्प ग्रुप्स बैंक लिंकेज (Self Help Groups Bank Linkage) कार्यक्रम की तरह बैंकों से उधार लेते हैं, इस मॉडल ने सेवाओं को गरीब जनसंख्या तक पहुँचाने का कार्य किया है।

नाबार्ड का अनुमान है कि भारत में 2.2 मिलियन स्वयं सहायता समूह है, जो 33 मिलियन सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सेल्फ हेल्प ग्रुप्स बैंक लिंकेज कार्यक्रम कुछ राज्य में भी शुरू किया गया है, जैसे– आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक।

**स्वयं सहायता समूहों का ग्रामीण भारत के सामाजिक–आर्थिक विकास में योगदानः**

- सामाजिक उद्यमिता को प्रोत्साहन देने में सहायक।
- लोगों में उद्यमशीलता, प्रबंधकीय गुणों जैसे नेतृत्व व निर्णय लेने की क्षमता इत्यादि का विकास।
- आर्थिक गतिविधियों द्वारा मूल्यवर्द्धक वस्तुओं का उत्पादन।
- नवाचार एवं रचनात्मक उद्योगों (क्रिएटिव इंडस्ट्रीज) को प्रोत्साहन।
- रोजगार, स्वरोजगार व उद्यमिता से गरीबी उन्मूलन में सहायक।
- विभिन्न संसाधनों (मानव, वित्तीय, प्राकृतिक एवं अन्य) के समुचित उपयोग से स्थानीय माँगों के अनुरूप वस्तुओं/सेवाओं के उत्पादन से स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करना।
- महिला स्वयं सहायता समूहों द्वारा उत्पादित विभिन्न खाद्य पदार्थों जैसे अचार, पापड़, बड़ी, दलिया, आटा, अगरबत्ती, मुरब्बा इत्यादि की सुगम उपलब्धता से महिलाओं व बच्चों के पोषण तथा विकास में महत्वपूर्ण योगदान।
- ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में होने वाले पलायन को रोकने में सहायक।
- स्वैच्छिक बचत और वित्तीय समावेशन को प्रोत्साहन।
- श्रम–आधारित नए रोजगार सृजन करने वाले क्षेत्रों को बढ़ावा।
- क्षेत्रीय आर्थिक व सामाजिक असमानता को कम करने में सहायक।

भारत के विभिन्न राज्यों जैसे– छत्तीसगढ़, ओडिशा, मध्य प्रदेश, झारखंड, बिहार, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, पश्चिम बंगाल और तेलंगाना इत्यादि में महिला स्वयं सहायता समूह विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं।

**लाभः**

- विगत कुछ वर्षों में देखा जाए तो इसमें महिलाएँ बढ़–चढ़ कर हिस्सा ले रही हैं जिससे समाज में उनकी स्थिति में सकारात्मक बदलाव देखने को मिल रहा है।
- स्वयं सहायता समूहों के सदस्य अपने नियमित बचत से एक कोष बना लेते हैं और उस कोष का उपयोग आपातकालीन स्थिति में अपने सामूहिक उद्देश्य के कार्य हेतु करते हैं।
- स्वयं सहायता समूह अपने कोष के पैसे से ग्रामीण आधारित सूक्ष्म या लघु उद्योग की शुरूआत भी करते हैं जिससे रोजगार के नये अवसर सृजित होते हैं।

- इन समूहों में से ही किसी को नेतृत्व दे दिया जाता है जो सारे प्रबंधन का कार्य करता है।
- इन समूहों को बैंकों द्वारा धन दिया जाता है, जिससे वित्तीय लेन–देन में आसानी होती है।
- स्वयं सहायता समूहों के निर्माण होने से दूसरे संस्थानों पर वित्तीय निर्भरता कम हो जाती है।

**चुनौतियाँ:**

- **ज्ञान की कमी:** ग्रामीण स्तर पर देखें तो लोगों में इसके प्रति जागरूकता की कमी है क्योंकि स्वयं सहायता समूहों में काम करने वाले लोग अधिकतर अशिक्षित होते हैं।
- **बैंकिंग सुविधाओं का अभाव:** भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं की अगर बात करें तो 6 लाख गाँव में केवल 1.2 लाख बैंकिंग शाखाएँ हैं जो कि औसत से भी कम है। साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक स्वयं सहायता समूहों को वित्तीय सेवाएँ जल्दी प्रदान करने को तैयार नहीं होते हैं।
- भारत में खास तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में पितृसत्तात्मक मानसिकता का होना, जो कि स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं की भागीदारी को हतोत्साहित करते हैं।
- **स्थायित्व तथा सुरक्षा:** स्वयं सहायता समूहों के स्थायित्व और उनकी गुणवत्ता का विषय हमेशा से मुख्य मुद्दा रहा है साथ ही इनकी सुरक्षा का दायित्व कौन ले इस पर समूहों के सदस्यों के पास कोई जवाब नहीं है।
- स्वयं सहायता समूह केवल सूक्ष्म वित्त और सूक्ष्म उद्यमिता को बढ़ाने में सक्षम है जो उनके आर्थिक संसाधनों को सीमित करते हैं।
- स्वयं सहायता समूह के कार्य आज भी प्राथमिक क्षेत्र से संबंधित हैं जो इनके निम्न कौशल को दर्शाते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में योग्य लोगों की कमी है। योग्यता की कमी होने के कारण इन स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों को प्रशिक्षण ठीक से नहीं मिल पाता, इसके अलावा क्षमता निर्माण और कौशल प्रशिक्षण के लिए संस्थागत तंत्र का अभाव है।
- स्वयं सहायता समूह, गैर सरकारी संस्थाओं और सरकारी एजेंसियों पर बहुत अधिक निर्भर है, जैसे ही इन संस्थाओं द्वारा अपना समर्थन वापस लिया जाता है वैसे ही इनका पतन हो जाता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी होने के कारण, स्वयं सहायता समूहों के द्वारा तैयार माल को बाजार तक पहुँचाने में कठिनाई होती है।

**सरकारी प्रयास:**

वित्तमंत्री ने अपने बजट 2019–20 में महिलाओं के लिए 'नारी तू नारायणीध्महिला' के लिए कई घोषणाएँ की हैं, जिसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है–

- महिला नेतृत्व पहलों और आन्दोलनों के लिए महिला केन्द्रित नीति निर्माण के दृष्टिकोण में बदलाव।
- बजट 2019–20 में लैंगिक भेदभाव को दूर करने के लिए सरकारी और निजी हित धारकों के साथ एक समिति प्रस्तावित की गयी है।
- महिला उद्यमिता को बढ़ावा देने के साथ ही मुद्रा योजना के तहत महिलाओं को सस्ता लोन देने का ऐलान किया गया है। महिला उद्यमियों को अब एक लाख रुपये तक का लोन दिया जाएगा।
- साथ ही जन धन खाते वाले प्रत्येक सत्यापित महिला एसएचजी (सेल्फ हेल्प ग्रुप) सदस्य को 5000 रुपये के ओवरड्राफ्रट की अनुमति दी गई है।
- इसके अतिरिक्त स्टैंड अप इंडिया स्कीम के तहत महिलाओं, SC/ST उद्यमियों को लाभ दिये जाने का प्रावधान किया गया है।

**दीनदयाल अंत्योदय योजना–** राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन डीएवाई–एनआरएलएम गरीब ग्रामीण महिलाओं को स्वावलंबी बनाने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है। यह मिशन भारत सरकार की ग्रामीण गरीबी दूर करने की प्रमुख योजना है। 2011 में स्थापित इस मिशन का मार्च 2018 तक 29 राज्यों और 5 संघशासित प्रदेशों के 584 जिलों के 4456 ब्लॉकों में प्रसार हो चुका है। यह मिशन ग्रामीण महिलाओं को कृषि एवं गैर–कृषि दोनों क्षेत्रों में आजीविका अपनाने में मदद कर रहा है। मिशन के तहत स्टार्ट अप ग्रामीण उद्यमिता कार्यक्रम (एसवीईपी), आजीविका ग्रामीण एक्सप्रेस योजना (एजीईवाई) जैसी उपयोजनाओं के सफल कार्यान्वयन से ग्रामीण महिलाओं की उद्यमिता क्षमता सामने आई है।

दीनदयाल अंत्योदय राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (डीएवाई–एनआरएलएम) के अंतर्गत महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए बैंक ऋण पर बल दिया जा रहा है ताकि उद्यम को बढ़ावा मिले। बैंकों द्वारा प्राप्त ऋण के माध्यम से कस्टम हायरिंग सेंटर, ग्रामीण परिवहन, कृषि तथा संबंधित कार्य, पशुपालन, बागवानी, हथकरघा तथा हस्तशिल्प, खुदरा व्यापार आदि जैसे उपयोगी उद्यमों को बढ़ावा देने में किया जा रहा है। पिछले 5 वर्ष में महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए बैंक संपर्क दो गुना से अधिक हो गया है।

**कौशल विकास से बढ़े रोजगार के अवसर–** कौशल विकास के तहत अब तक 56 लाख से ज्यादा युवा प्रशिक्षित किए जा चुके हैं जिनमें से करीब 24 लाख अपने हुनर से जुड़े क्षेत्र में रोजगार पा चुके हैं। दरअसल देश में पहली बार भारत सरकार ने स्किल डेवलपमेंट को लेकर एक समग्र और राष्ट्रीय नीति तैयार की। इसके लिए 21 मंत्रालयों और 50 विभागों में फैले कौशल विकास के कार्य को विशेष तौर पर गठित हुए कौशल विकास मंत्रलय के अधीन लाया गया है।

12,000 करोड़ रुपये के बजट के साथ शुरू हुई उद्यमिता और कौशल विकास पहलों के संस्थानीकरण के प्रयास के रूप में नाबार्ड विशिष्ट संस्थाओं को सहायता प्रदान करता है, जो विभिन्न कौशलों पर आधारित ग्रामीण युवकों और महिलाओं को उद्यमिता विकास और प्रशिक्षण प्रदान करते हैं जिससे उन्हें आजीविका के लिए बेहतर विकल्प प्राप्त होते हैं।

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से युवाओं को उद्योग से संबंधित दक्षता का प्रशिक्षण और अपनी रोजगारपरकता में सुधार करने का मौका मिल रहा है। युवा वर्ग श्रम बाजार में प्रतिस्पर्द्धा के लिए तैयार हो सके, इसके लिए सरकार ने विभिन्न प्रकार के दक्षता कार्यक्रम उपलब्ध कराए हैं, जैसे दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना, राष्ट्रीय शहरी जीविकोपार्जन मिशन और राष्ट्रीय ग्रामीण जीविकोपार्जन मिशन इत्यादि।

**मुद्रा योजना से बढ़े स्वरोजगार के अवसर–** मुद्रा योजना के तहत अगस्त 2018 तक 8.19 करोड़ लोगों ने ऋण लिया है। यदि कम से कम एक व्यक्ति को रोजगार मिलने का भी औसत मान लिया जाए तो 8–19 करोड़ लोगों को रोजगार मिला है। इस योजना के तहत अब तक 3.24 लाख करोड़ रुपये वितरित किए जा चुके हैं जिनमें ज्यादातर लघु उद्यमी हैं। इनमें से बड़ी संख्या उन लोगों की है जो इससे पहले किसी भी प्रकार के व्यवसाय से नहीं जुड़े थे। मुद्रा ऋण 10 लाख रुपये तक के गैर–कृषि कार्यकलापों के लिए उपलब्ध है।

मुद्रा योजना महिला सशक्तिकरण का भी एक बेहतरीन उदाहरण है। इस योजना के तहत 30 अगस्त 2018 तक 86,37,823 लोग लाभ ले चुके हैं, इनमें 70 प्रतिशत महिलाएँ हैं यानी लगभग छह करोड़ से अधिक महिलाओं ने इसका लाभ उठाया है।

**स्टैंडअप इंडिया–** इस योजना से देशभर में रोजगार के अवसर बढ़ रहे हैं। इस योजना के अंतर्गत 10 लाख रुपये से 100 लाख रुपये तक की सीमा में ट्टणों के लिए अनुसूचित जातिध्अनुसूचित जनजाति और महिलाओं के बीच उद्यमशीलता को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। हर बैंक को कहा गया है कि वह यह सुनिश्चित करे कि दलित, पिछड़े और महिलाओं को खोज कर इस स्कीम से उन्हें जोड़ें। इन योजनाओं के माध्यम से सरकार ने कुटीर उद्योग को बेहतर बनाने की कोशिश की है। कुटीर उद्योग के बारे में अधिक जानकारी के लिए अपने नजदीकी बैंक या जिला उद्योग केन्द्र से भी संपर्क कर सकते हैं।

**राष्ट्रीय ग्रामीण जीविकोपार्जन मिशन (एनआरएलएम)–** इस कार्यक्रम में विश्व बैंक ने निवेश किया है। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब वर्गों को दक्ष और प्रभावशाली संस्थागत मंच प्रदान करना और स्थायी जीविकोपार्जन में वृद्धि और वित्तीय सेवाओं की उपलब्धता में सुधार करना है, लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि दक्षता विकास में सतत निवेश किया जाए और उद्यमशीलता के जरिए उत्कृष्ट रोजगार सृजन के अवसरों को बढ़ाया जाए। भारत में कौशल की कमी को दूर करने और रोजगारपरकता को बढ़ाने के लिए ऐसी नीतियाँ और रणनीतियाँ बनाई जानी चाहिए जो श्रम प्रासंगिक शिक्षा प्रणालियों, कैरियर मार्गदर्शन, जीवन कौशल और तकनीकी–व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण योजनाओं तथा औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्र में 'ऑन द जॉब' प्रशिक्षण पर केंद्रित हों।

**निष्कर्ष:**

भारतीय अर्थव्यवस्था में दहाई की गति प्राप्त करना तथा निरंतरता बनाए रखना बहुत ही महत्त्वाकांक्षी प्रतीत होता है, आज के बदलते भारत में आवश्यकता है कि विभिन्न महत्वपूर्ण चुनौतियों, जैसे सभी राज्यों में संतुलित समान आर्थिक विकास, सामाजिक सद्भाव, आगामी पीढ़ियों के मद्देनजर मानव–हित में पर्यावरणीय संरक्षण एवं संतुलन बनाते हुए 2030 तक समावेशी एवं सतत विकास के लक्ष्यों को समयबद्ध रूप से रणनीतिक तौर पर प्राप्त किया जाये। दूसरी ओर, निजी क्षेत्र, गैर–सरकारी संस्थाएँ एवं स्वयं सहायता समूह अपने एकीकृत प्रयास से ग्रामीण भारत की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य समस्याओं का समाधान एवं प्रबंधन के बेहतर तरीके सहायक हो रहे हैं।

उपरोक्त सभी पहलुओं पर गौर करने और समझने के बाद यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण भारत के सामजिक–आर्थिक विकास में गैर–सरकारी संस्थाओं, स्वयं सहायता समूहों एवं निजी क्षेत्र की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ये सभी संस्थाएँ अपनी विभिन्न सामाजिक गतिविधियों और कार्यों से नए भारत के निर्माण में तथा विभिन्न सामाजिक विषमताओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, भेदभाव, भ्रष्टाचार एवं महिला एवं बाल उत्पीड़न इत्यादि को जन आंदोलन एवं भागीदारी से दूर करने में सरकार व समाज को अपना बहुमूल्य योगदान दे सकती हैं।

# पानी से हमारी बेरूखी ठीक नहीं ''भारतीय परम्पराओं में जल संरक्षण व परंपरागत जल संरक्षण पद्धतियाँ''

**सात्विक सहाय बिसारिया**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

प्रकृति में पानी बरसने का तरीका जब अपरिवर्तित रहा है तो जल संग्रह का तरीका कैसे बदल सकता है। संस्कृति में आ रहे आधुनिक बदलाव, आदिकाल की परंपराओं और सामाजिक अवधारणाओं को प्रभावित करते नजर आ रहे हैं। जल प्रबंधन व संरक्षण की परंपरा प्राचीनकाल से चली आ रही है, जो सामाजिक ढांचे से जुड़ी हुई है। जल संचयन का उल्लेख कई प्राचीन ग्रंथों में भी उपलब्ध है। लोगों की जल स्रोतों के प्रति आस्था और निर्भरता किसी से छुपी नहीं है। परंपरागत जल स्रोत जैसे–कुएं, तालाब, बावड़िया लोगों की श्रद्धा के केंद्र थे। इसलिए कहा जा सकता है कि परंपरा तभी जीवित रहती है, जब लोगों की श्रद्धा उससे जुड़ी हुई हो।

भारत में जल संसाधनों की उपलब्धता और प्राप्ति की दृष्टि से काफी विषमताएं हैं। जल संसाधन के अनुसार जल प्रबंधन की प्रणालियां विकसित होती हैं। जैसे हिमालय में नदी से जल संचयन प्रणाली विकसित हुई, तो राजस्थान में वर्षा जल संचयन की प्रणाली। राजस्थान के लोगों ने जल के कृत्रिम स्रोत विकसित किए, यही जल के पारंपरिक स्रोत कहलाते हैं। नाली, तालाब, जोहड़, बांध, सागर–सरोवर, कुएं, बावड़ियां आदि द्वारा जल संचयन करके लोगों ने कठिन जीवन को भी सहज बनाया है।

पानी को सहेजने का भाव हमारे देश की परम्पराओं में अन्तर्निहित है। इसलिये वर्तमान में जल संकट से निपटने के लिये अक्सर उन्हीं परम्परागत जल संरक्षण पद्धतियों को अपनाने की दुहाई दी जाती है। मगर वास्तविकता में इन्हें अपनाना तो दूर जल संचय के लिये हम अपने व्यवहार में मामूली बदलाव तक नहीं लाते।

अथर्ववेद में यह उल्लेख है 'अश्विनी के देवदूतों ने इस दुनिया के सृजन के समय जलीय, स्थलीय, वायवीय और दूसरे अनेक प्रकार के जीवों का निर्माण किया तथा आइए उन सभी जीवों को पृथ्वी पर उपलब्ध पानी से जुड़ी सन्तुष्टि व वरदान प्रदान करें। नदियाँ पुराने समय से पानी की स्रोत रही हैं और मानव सभ्यता का विकास इनके आगोश में हुआ है।

गंगे च यमुने चौव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन सन्निधिं कुरु।।

भारतीय वाङ्मय के इस प्रेरक श्लोक में भारत की नदियों और पानी के महत्त्व को उकेरा गया है। इसमें कहा गया है कि गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु ये सब भारत की नदियाँ तभी तक पवित्र और जीवनदायिनी हैं, जब तक इनमें पानी मौजूद है। पृथ्वी पर वायुमंडलीय ऑक्सीजन सूर्य का प्रकाश और पानी वरदान स्वरूप ही तो हैं, जिनकी उपस्थिति से ब्रह्मांड के इस ग्रह पर जीवन का प्रादुर्भाव हो पाया।

हम सभी इस बात से बखूबी परिचित हैं कि पृथ्वी ग्रह और इस पर जीवन के लिये पानी बेहद जरूरी है। मगर हममें से बहुत लोगों को लगता है कि पानी का भण्डार असीमित है। जबकि सच्चाई यह है कि स्वच्छ पानी के स्रोत सीमित हैं और वे भी बहुत तेजी से सिकुड़ रहे हैं। भारत जैसे देश में जहाँ जैवविविधता और प्राकृतिक संसाधनों की वैसे तो भरमार है लेकिन बढ़ती आबादी, वनों के विनाश, पर्यावरण प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग जैसे संकटों के कारण यहाँ प्राकृतिक सन्तुलन पटरी से उतरता जा रहा है। जीवाश्म ईंधन, ग्रीनहाउस गैस और कार्बन उत्सर्जन मिलकर जहाँ एक तरफ जलस्रोतों को सुखा रहे हैं तो दूसरी ओर शहरीकरण और जल प्रदूषण के चलते भू–सतह तथा भूजल की मात्रा और गुणवत्ता दोनों पर बुरा असर हो रहा है। अगर देश की कृषि पर नजर डालें तो यह आज भी प्राथमिक तौर पर बारिश के पानी पर निर्भर है। लेकिन खराब मानसून से पैदावार बिगड़ती है, जिसका सीधा प्रभाव राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर होता है। इसलिये पानी के संकट को दूर करने के लिये जल संरक्षण की तमाम युक्तियाँ, परम्पराएँ, तकनीक और रणनीतियाँ मानव सभ्यता के आदि काल से आधुनिक युग तक प्रयोग में लाई जाती रही हैं।

असमान वितरण से प्रत्येक व्यक्ति चिंतित है। कई सरकारी नीतियां नवीनतम तकनीकों की ओर झुकाव रखती हैं, लेकिन गौर कर लेना चाहिए कि जल संरक्षण की परंपराएं ऐसे ही नहीं पनपी थीं। जल संकट से होने वाले युद्धों की भविष्य वाणियाँ जब से सुनने में आई हैं, तब से जल संरक्षण शब्द महत्वपूर्ण हो गया है। विकासात्मक योजनाओं के अलावा परंपरागत जल प्रबंधन की प्रणालियों का विकसित किए जाने से ही इस समस्या का समाधान है। नवीनतम रूप से पारंपरिक जल स्त्रोतों का विकास, बेकार या काम में ना आने वाले तालाबों का अधिग्रहण कर उन्हें पुनर्जीवित करने के साथ–साथ प्रत्येक गांव में तालाबों के नजदीक 5 से 10 प्रतिशत इलाका सामुदायिक बनाने के लिए आरक्षित रखे जाने की आवश्यकता है। जंगलो की कटाई के कारण जलग्रहण क्षेत्रों में मिट्टी जमने के कारण तालाब उपयोग के योग्य नहीं रहे। तालाब क्षेत्रों में अतिक्रमण से भूमिगत जल का स्तर नीचे चला गया है। अधिकांश कुएँ सूख गए हैं। परंपरागत जल प्रणालियों का आकार छोटा होने से समुदाय अपने श्रम, पूंजी और ज्ञान के बूते पर उन्हें आसानी से संभाल सकते हैं।

## भारत की परम्परागत जल संरक्षण तकनीकः

**खेत तालाब–**

खेतों में जल के संरक्षण के लिए किसी अपवाह के क्षेत्र में गहरा गड्ढा करके एक छोटे तालाब का रूप दिया जाता है, जिसे फार्म पौण्ड भी कहते हैं। खेत तालाब पर कई राज्य सरकारें किसानों को अनुदान भी देती हैं। ये बागवानी जैसी फसलों व खरीफ में फसलों की जीवन रक्षक सिंचाई के लिए काम में आते हैं। एक सामान्य खेत तालाब से एक किसान परिवार का कामकाज वर्षभर आराम से चल सकता है। कच्चे व पक्के दोनों तरह के खेत तालाब बनाए जाते हैं। आजकल इसमें प्लास्टिक शीट बिछाकर जल के रिसाव को रोका जाता है।

**झीलें–**

मध्यप्रदेश में परंपरागत जल संरक्षण सर्वाधिक झीलों में होता है। झीलों का निर्माण कई राजाओं, सेठों, बंजारों व स्वयं जनता ने करवाया था। इसके पानी का उपयोग पेयजल के अलावा सिंचाई में भी होता है। मध्यप्रदेश में छोटे–बड़े आकार की कई झीलें हैं। वर्तमान में तो झीलों ने पर्यटन स्थलों का रूप धारण कर लिया है। ये आजकल प्रदूषण का शिकार हो गयी हैं। झीलों की तली में गाद जमने से इनकी जलधारण क्षमता कम होती जा रही है। इस पर काफी कार्य करने की जरूरत है।

**जोहड़–**

राजस्थान में पानी सहेजने की एक पद्यति पाई जाती थी, जिसका नाम है जोहड़। ये साधारण पत्थर व मिट्टी के अवरोध होते थे। इनका निर्माण ढलान वाली भूमि पर वर्षाजल को रोकने के उद्देश्य से किया जाता था। जोहड़ के तीन ओर पुश्ते बनाए जाते थे, जबकि चौथा सिरा वर्षाजल के प्रवेश के लिए खुला छोड़ा जाता था। राजस्थान जल संचय की इस परंपरागत विधि को वर्तमान में मध्यप्रदेश के कुछ गैरसरकारी संगठनों ने पुनर्स्थापित किया है। इसकी सहायता से आज राज्य के 700 से अधिक गांवों की पानी की जरूरत पूरी की जा रही है।

**झालरा–**

झालरा अपने से ऊंचे तालाब या झील के रिसाव से पानी प्राप्त

करते थे। इसका वास्तुशिल्प बहुत ही सुन्दर है, जो बावड़ी का ही एक रूप माना जाता है। झालरा के तीनों ओर सीढ़ियां होती हैं। यह आयताकार होता है। इसके पानी का उपयोग पीने में नहीं बल्कि धार्मिक रिवाजों जैसे सामूहिक स्नान आदि में होता था।

**बावड़ी–**

मध्यप्रदेश में वर्षा जल संचयन के लिए बावड़ी निर्माण की प्राचीन परंपरा है। प्राचीनकाल, पूर्व मध्यकाल व मध्यकाल में बावड़ियों के निर्माण की जानकारी मिलती है। ये सामान्यतः तालाब, मन्दिर, किलों या मठों के नजदीक बनाई जाती थीं। नीचे उतरने की सीढ़ियां होने से गहरी बावड़ी के तल से पानी लिया जा सकता है। बावड़ियां पीने के पानी, सिंचाई व स्नान के लिए महत्वपूर्ण जल स्रोत रही हैं। कई बावड़ियों पर आवासीय व्यवस्था, बरामदे व स्नानागार होते थे। इसका धार्मिक महत्व होने से इसके जल का उपयोग व्यक्ति विशेष न करके पूरा मोहल्ला या समुदाय करता था। बावड़ियों पर लोगों का जमावड़ा बना रहता था तथा छोटे–बड़े त्योहार इसी पर ही मनाते थे। वर्तमान में इन बावड़ियों की हालत खराब है। कई बावड़ियाँ को लुप्त हो गई हैं। इनका जीर्णोधार किया जाना चाहिए।

**कुंड और कुईं–**

सीमेंट या स्थानीय सामग्रियों से कुंड बनाया जाता है। इन इलाकों में अधिकतर भूजल की उपलब्धता सीमित और पानी क्षारीय होता है। कुंड तश्तरी जैसी रचना होती है जिसके केन्द्र में कुआँ होता है। बाल्टी की मदद से इसमें से पानी बाहर निकालते हैं। कुंड का व्यास और गहराई उसके उपयोग पर निर्भर करती है। ज्यादातर कुंड किसी एक परिवार द्वारा निजी उपयोग के लिये बनाया जाता है। एक अनुमान के अनुसार जिस कुंड का तटबन्ध क्षेत्रफल 100 वर्ग मीटर है और उस इलाके में यदि 100 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा होती है तो उस कुंड में 10 हजार लीटर पानी आसानी से इकट्ठा हो जाता है।

कुंड के अलावा कुईं नामक एक परम्परागत पानी संचायक प्रणाली है जो 10 से 12 मीटर गहरा गड्ढा होता है। इसका निर्माण किसी टंकी या हौज के समीप उससे रिसने वाले पानी को इकट्ठा करने के लिये किया जाता है। बहुत कम बारिश वाले क्षेत्रों में वर्षा के पानी को संचय करने के उद्देश्य से भी कुईं का निर्माण किया जाता है। कुईं का मुँह सामान्यतः बहुत संकरा बनाया जाता है ताकि संचित पानी का वाष्पीकरण कम हो। कुईं के भीतरी हिस्से में धीरे–धीरे पानी

अवशोषित होकर व्यापक क्षेत्र को नमी प्रदान करता है। कई बार गाँव के लोग कुईं के मुँह को लकड़ी से ढँककर रखते हैं और पानी की कमी की दशा में इसमें संचित पानी को अन्तिम विकल्प के तौर पर इस्तेमाल करते हैं।

**खडीन और टाँका–**

खडीन नामक जल संरक्षण प्रणाली को सदियों से अपनाया जा

रहा है। इसका आरम्भ पन्द्रहवीं सदी में जैसलमेर के पालीवाल ब्राह्मण समुदाय ने किया था। स्थानीय राजा ने यहाँ की भूमि पालीवाल समुदाय को देते हुए इसमें खडीन विकसित करने को कहा था। राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर और बाड़मेर जिलों में भी खडीन पाये जाते हैं। खडीन जल संरक्षण तकनीक में पथरीले तटबंध से वर्षाजल बहता हुआ समीपस्थ घाटी में पहुँचता है और वहाँ की भूमि को नमी और मिट्टी को उर्वरता प्रदान करता है। खडीन तकनीक ईसा पूर्व साढ़े चार हजार साल पहले इराक में अपनाई जाने वाली सिंचाई विधि से मेल खाती है।

## हिमालय और देश के दूसरे हिस्सों की परम्परागत जल संरक्षण तकनीक बाँस और अपातानीः

पूर्वी हिमालय क्षेत्रों में बाँस पाइप की सहायता से सिंचाई की जाती है। पहाड़ी चोटियों से निकलने वाले झरनों की जलधारा में बाँस के पाइप लगाकर इन्हें निचले इलाकों में भेजा जाता है। इस परम्परागत तकनीक के स्थान पर आजकल लोहे के पाइप इस्तेमाल में लाये जाने लगे हैं। पूर्वी हिमालय की पहाड़ियों से निकलने वाले जलस्रोतों की अनेक जलधाराओं के बीच अस्थायी दीवार बनाकर पानी की दिशा घाटियों में मोड़ दी जाती है। इस तकनीक को 'अपातानी' कहते हैं। इसे अरुणाचल प्रदेश के सुबनसिरी जिले के अपातानी जनजाति द्वारा अपनाया जाता है, इसलिये इसे यह नाम दिया गया है। समस्त पश्चिमी हिमालय के ऊँचाई वाले क्षेत्र में कूहल तकनीक से पहाड़ों की ढलान से बहते पानी को संचित किया जाता है।

पानी से हमारी बेरुखी ठीक नहींः

हमारी परम्पराओं, उत्सव और मान्यताओं का रिश्ता मौसम और पानी से जुड़े होने के कारण पानी के संरक्षण को लेकर हम चिन्ता करते थे। आज परिवेश बदल गया और हमने अपनी सोच भी बदल डाली। हमने पानी का सम्मान करना छोड़ दिया जिसका खामियाजा भी हम भुगत रहे हैं। विकास के नाम पर उद्योग और शहरीकरण के दबाव में तालाबों और जलाशयों को पाट दिया गया। इस कारण पानी की किल्लत झेलने को हम विवश हैं।

हमारे आज और आने वाले कल के लिये पानी को सहेजना जरूरी है। पानी का हमें समझदारी से प्रबन्धन और इस्तेमाल करना होगा। कृषि क्षेत्र में पानी का उचित प्रयोग जरूरी है। मगर दुरुपयोग सरासर गलत। वैज्ञानिकों से उम्मीद है कि वे शोध द्वारा कम पानी में वृद्धि करने वाली और पर्याप्त पैदावार देने वाली फसलों को तैयार करेंगे।

जल संरक्षण की वैज्ञानिक व्यवस्था हमारे प्राचीन काल के समाज में भी रही है। भारत में जल प्रबन्धन का इतिहास बहुत पुराना है। बढ़ती आबादी और इससे जुड़ी जरूरतों की पूर्ति के लिये हमने पानी का दोहन तथा बेपरवाह इस्तेमाल किया है। पृथ्वी के पर्यावरण और सुखद भविष्य के हित में हमें अनिवार्य रूप से पानी को सहेजना होगा।

भारत में जल संरक्षण और प्रबन्धन के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सदियों पुराने परम्परागत ज्ञान पर निर्भर होना पड़ता है। यह ज्ञान हमें पर्यावरण और जीवन के मूल्यों से जोड़ता है। पानी से सम्बद्ध हमारा परम्परागत ज्ञान समाज में सभी के लिये पानी की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता को सुनिश्चित करता था। पानी के संरक्षण का यह ज्ञान प्राचीन भारतीय समाज के सभी स्तरों पर विकास और समृद्धि का आधार बना।

आज पर्यावरण की सुरक्षा के लिये, हमें पानी के संरक्षण से जुड़ी प्राचीन परम्पराओं और तकनीक को आधुनिक समाज में अपनाना होगा, तब जाकर वर्तमान समय की पानी से जुड़ी समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है। इसकी पहली सीढ़ी है कि हम सब मिलकर समाज सुधार के लिये पानी बचाएँ और उसका आदर करें। बच्चों में भी इस भावना का विकास करें जिससे वे पानी का महत्त्व आत्मसात कर सकें और उनके साथ भविष्य का पर्यावरण सुरक्षित रहे।

जरूरत भर पानी करें खर्चः

पानी को सहेजने के लिये केवल हमें अपनी सोच में बदलाव लाना होगा। लोगों में पानी के महत्त्व से जुड़ी हुई जागरुकता लाकर यह काम पूरा किया जा सकता है। अपने रोजमर्रा के जीवन में छोटे–छोटे आसान कदम उठाकर हम बड़े बदलाव ला सकते हैं। हमें पानी की जितनी जरूरत हो, उतना ही पानी इस्तेमाल करें, घर हो या बाहर कहीं भी नल खुला न छोड़ें। कोई ऐसा करे तो उसे वहीं पर टोकें। स्कूटर–कार की धुलाई में कम–से–कम पानी खर्च करें। और इसके लिये साफ पानी के बजाय इस्तेमाल हुए पानी का प्रयोग करें तो बेहतर होगा। नहाने के लिये उपकरणों के स्थान पर बाल्टी का इस्तेमाल करना कुछ ऐसे उपाय हैं जिन्हें हम अपने जीवन में अपनाकर हर दिन पानी की बचत कर सकते हैं। सोचिए, अगर हम हर दिन थोड़ा ध्यान देकर अगर 5 लीटर पानी की बचत करें तो एक पूरे साल हम 1825 लीटर पानी बचा सकते हैं।

उद्योगों में पानी का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल रोकना होगा। यहाँ पानी को एक से अधिक बार प्रयोग यानी रिसाइक्लिंग करने वाली टेक्नोलॉजी का सहारा लेना जरूरी कदम है। शहरों में पानी के परिवहन और वितरण के दौरान भी बड़ी मात्रा में पानी रिसकर बर्बाद हो जाता है। इस ओर गम्भीरता से ध्यान दिये जाने की जरूरत है। वहीं दूसरी ओर राष्ट्रहित में औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्रों के साथ–साथ घरों में भी पानी की बर्बादी पर अंकुश लगाना हमारा परम कर्तव्य बनता है। सरकार के साथ–साथ सभी नागरिकों का भी दायित्व है कि हम मिलकर पानी की हिफाजत करें। इसी तरह अगर देश के सभी नागरिक पानी बचाएँ तो कितना बड़ा परिवर्तन आ सकता है। आइए, पानी का संरक्षण करके और पर्यावरण को सुन्दर बनाकर हम अपनी धरती का श्रंगार करें।

# पौधों में सूक्ष्म तत्वों का विवरण

**सोनवीर चक, प्रियंका चक**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

अन्य पोषक तत्वों की भांति सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों की बढ़वार एवं उनसे प्राप्त होने वाली उपज पर प्रभाव डालते हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता फसल को कम मात्रा में ही होती है परंतु इनकी महत्ता कम है यह कदापि सत्य नहीं है। सूक्ष्म पोषक तत्वो की कमी होने पर उपज एवं उत्पाद की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त इनकी कमी होने पर भरपूर मात्रा में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश उर्वरक के प्रयोग करने पर भी अच्छी उपज नहीं प्राप्त होती है। किसान मुख्य पोषक तत्वों का उपयोग फसलों में ज्यादा करते हैं एवं सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे तांबा, जिंक, लोहा, मॉलीब्लेडिनम, बोरान, जस्ता और मैगनीज आदि का लगभग नगण्य उपयोग करते हैं। जिसकी वजह से कुछ वर्षों में भूमि में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण पौधों पर दिखाई दे रहे हैं।

## फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं निवारणः

**1. फसल में तांबा या कॉपर की कमी–**

❄✱✢✺☎✆ यह क्लोरोफिल के निर्माण में सहायक होता है, पौधों को सहनशीलता प्रदान करता है एवं चयापचय क्रिया में सहायक होता है।

❄❄❊ ❄▲ ▮•✱✎✱☎✆ इसकी कमी से पौधों की नई पत्तियों में सिरा सड़न हो जाता है। बड़वार कम होना तथा पत्तियों का रंग हरा होना इसके मुख्य लक्षण हैं, इसकी कमी से नींबू में डाई बेक, चुकंदर में सफेद सिरा एवं सेव में सफेद सिरा छाल खुरदुरा एवं फटने की समस्या उत्पन्न होती है।

❄◆■✱◆☎✆ तांबा की कमी को सुधारने के लिए कॉपर सल्फेट का 10–20 किलोग्राम मात्रा का प्रति हेक्टेयर भूमि में जुताई के समय इस्तेमाल करें।

2. फसल में जिंक या जस्ता की कमी–

कार्यः– यह एंजाइम का मुख्य अवयव होता है। क्लोरोफिल निर्माण में उत्प्रेरक का कार्य करता है, तथा साथ ही प्रकाश संश्लेषण एवं नाइट्रोजन के पाचन में सहायक होता है।

कमी के लक्षणः– फसल में जिंक की कमी से पौधों की बढ़वार रुक जाती है, पत्तियां मुड़ जाती हैं एवं तने की लंबाई घट जाती है। जिंक की कमी से धान में खैरा नामक बीमारी होती है। जिंक की कमी से आम, नींबू एवं लीची में लिटिल लीफ तथा सेव व आडू में रोजेट की समस्या होती है। धान की नर्सरी में जस्ते की कमी के लक्षण पौधों की पत्तियों पर छोटे कत्थई रंग के धब्बों के रूप में आती है। इसके अतिरिक्त रोपाई के 10 से 15 दिनों के बाद जस्ते की कमी होने पर तीसरी पत्ती के आधार पर पीलापन आता है और उसके पश्चात् छोटे–छोटे कत्थई रंग के धब्बे पत्तियों पर पड़ते हैं जो बाद में मिलकर बड़े धब्बों या लाइन का रूप ले लेते हैं।

निदानः– भूमि में जिंक की कमी को दूर करने के लिए जिंक सल्फेट को 15 से 30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें एवं 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट एवं 0.2 प्रतिशत चूने का घोल पत्तियों पर छिड़काव करके दूर किया जा सकता है।

3. फसल में लोहा या आयरन की कमी–

कार्यः– लोहा क्लोरोफिल निर्माण में सहायक होता है। पौधों में संपन्न होने वाली ऑक्सीकरण एवं अवकरण की प्रतिक्रिया में यह उत्प्रेरक का कार्य करता है।

कमी के लक्षणः– पौधों में आयरन की कमी से नई पत्तियों में हरिमा हीनता हो जाती है, पौधे कमजोर हो जाते हैं तथा पत्तियों की शिराओं के मध्य में पीलापन आ जाता है

निदानः– पौधों में आयरन की कमी को दूर करने के लिए 20 से 40 किग्रा. फेरस सल्फेट मिट्टी में डालना चाहिए या 0.4 फेरस सल्फेट एवं 0.2 प्रतिशत चूने के घोल का पर्णीय छिड़काव करें।

4. मॉलीब्डेनम–

कार्यः–दलहनी फसलों की ग्रंथियों द्वारा स्थिरीकृत नाइट्रोजन के अवशोषण हेतु मॉलीब्डेनम की आवश्यकता होती है यह फास्फोरस चयापचय को भी नियंत्रित करता है।

कमी के लक्षणः– मॉलीब्डेनम की कमी के कारण पत्तियों की शिराओं के मध्य हरिमा हीनता या क्लोरोसिस हो जाती है इसकी इसकी कमी से फूलगोभी में व्हिपटेल एवं नींबू वर्गीय पौधों की पत्तियों में पीला धब्बा रोग होता है।

निदानः– मॉलीब्डेनम की कमी को दूर करने के लिए सोडियम मालिबडेट को 0.2 से 0.6 किग्रा. प्रति हेक्टेयर भूमि में जुताई के समय डालें।

5. बोरान–

कार्यः– यह दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली ग्रंथियों के निर्माण में सहायक होता है। पौधों के द्वारा जल शोषण को नियंत्रित करता है।

कमी के लक्षणः– बोरान की कमी से पत्तियां मोटी होकर मुड़ जाती हैं। इसकी कमी से आम में आंतरिक सड़न, आंवला में फल सड़न, चुकंदर में आंतरिक गलन, शलजम मूली एवं गाजर में ब्राउन रॉट, फूलगोभी में गोरापन एवं आलू की पत्तियों में झूलसन हो जाता है। फूलगोभी में भूरापन एवं आलू की पत्तियों में स्थूलन हो जाता है।

निदानः– बोरान की कमी को दूर करने के लिए 0.2 प्रतिशत बोरेक्स या बोरिक अम्ल का 150 लीटर पानी में 0.1 प्रतिशत का घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

6. मैगनीज–

कार्यः– क्लोरोफिल निर्माण में सहायक होता है। विभिन्न क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

कमी के लक्षणः– पौधों में मैगनीज की कमी से पत्तियों में छोटे–छोटे क्लोरोसिस के धब्बे बन जाते हैं। इसकी कमी से चुकंदर में चित्तीदार पीला रोग एवं ओट में स्पाइक नामक रोग हो जाता है।

निदानः– मैंगनीज सल्फेट का 10 से 20 किग्रा. प्रति हेक्टेयर उपयोग करना चाहिए या पर्णीय छिड़काव हेतु 0.4 प्रतिशत मैग्नीज सल्फेट एवं 0.3 प्रतिशत चूने के घोल का छिड़काव करें।

# मूली की उन्नत खेती

**लवकेश कुमार सोनी**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

हमारे देश में मूली की खेती प्रायः सभी क्षेत्रों में की जाती है। सामान्यतः सब्जी उत्पादक कृषक सब्जियों की अन्य फसलों की मेढ़ों पर या छोटे–छोटे क्षेत्रों में मूली लगाकर आय अर्जित करते हैं। शीत ऋतु में भी कृषक इसकी फसल को 30 से 60 दिन में तैयार कर पुनः बोवनी कर दो बार उपज प्राप्त कर लेते हैं। यह फसल कम खर्च में अधिक उत्पादन देने वाली सलाद के लिए उत्तम है। जड़ वाली सब्जियों में इनका प्रमुख स्थान है तथा इनकी खेती सम्पूर्ण भारत वर्ष में की जाती है।

**महत्व–** मूली का उपयोग आमतौर पर सलाद एवं पकी हुई सब्जी के रूप में किया जाता है। इसमें तीखा स्वाद होता है, इसका उपयोग नाश्ते में दही के साथ पराठे के रूप में भी किया जाता है। इसकी पत्तियों की भी सब्जी बनाई जाती है। मूली विटामिन सी एवं खनिज तत्व का अच्छा स्त्रोत है। मूली लीवर एवं पीलिया मरीजों के लिए भी अनुसंशित है। यदि उत्पादक मूली की खेती वैज्ञानिक तकनीक से करें, तो इसकी खेती से अधिक उपज के साथ–साथ अच्छा लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस लेख में मूली की उन्नत खेती कैसे करें का उल्लेख किया गया है।

## उपयुक्त जलवायुः

मूली अधिक तापमान के प्रति सहनशील है, किन्तु सुगंध विन्यास और आकार के लिए ठंडी जलवायु की आवश्यकता होती है। अधिक तापमान के कारण जड़ें कठोर और चरपरी हो जाती हैं। मूली की सफल खेती के लिए 10 से 17 डिग्री सेल्सियस तापमान सर्वोत्तम माना गया है।

## भूमि चयनः

मूली के उत्तम उत्पादन के लिए उचित जल निकास वाली रेतीली दोमट और दोमट भूमि अधिक उपयुक्त रहती है। मटियार भूमि मूली की फसल उगाने के लिए अनुपयुक्त रहती है, क्योंकि इस भूमि में जड़ों का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

## भूमि की तैयारीः

मूली की खेती के लिए गहरी जुताई की आवश्यकता होती है, क्योंकि इसकी जड़ें भूमि में गहरी जाती हैं। गहरी जुताई के लिए मिटटी पलटने वाले हल से जुताई करें व इसके बाद दो बार कल्टीवेटर या देशी हल चलाएँ। जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं, ताकि भूमि समतल और भुरभुरी हो जाये।

## उन्नत किस्मेंः

हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में मूली की दो प्रकार की किस्में उगाई जाती हैं, एशियन और यूरोपियन जो इस प्रकार हैं।

**एशियन किस्में–** पूसा चेतकी, जापानी सफेद, पूसा हिमानी, पूसा रेशमी, जौनपुरी मूली, हिसार मूली न– 1, कल्याणपुर– 1, पूसा देशी, पंजाब पसंद, चाइनीज रोज, सकुरा जमा, व्हाईट लौंग, के एन– 1, पंजाब अगेती और पंजाब सफेद आदि प्रमुख हैं।

**यूरोपियन किस्में–** व्हाईट आइसीकिल, रैपिड रेड, व्हाईट टिपड, स्कारलेट ग्लोब और फ्रेंच ब्रेकफास्ट आदि प्रमुख हैं।

## बीज की मात्राः

मूली के बीज की मात्रा उसकी जाति, बोने की विधि और बीज के आकार पर निर्भर करती है। सामान्यतया 5 से 10 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर आवश्यक होता है।

## बुवाई का समयः

मूली साल भर उगाई जा सकती है, फिर भी व्यावसायिक स्तर पर इसे सितम्बर से जनवरी तक बोया जाता है।

## बुवाई की विधिः

मूली की बुवाई दो प्रकार की प्रचलित विधियों से अधिक की जाती है, जैसे–

**कतारों में–** अच्छी प्रकार तैयार क्यारियों में लगभग 30 सेंटीमीटर की दूरी पर कतारें बना ली जाती है और इन कतारों में बीज को लगभग 3 से 4 सेंटीमीटर गहराई में बो देते हैं। बीज उग जाने पर जब पौधों में दो पत्तियां आ जाती है तब 8 से 10 सेंटीमीटर की दूरी छोड़कर अन्य पौधों को निकाल देते हैं।

**मेड़ों पर–** इस विधि में क्यारियों में 30 सेंटीमीटर की दूरी पर 15 से 20 सेंटीमीटर ऊँची मेड़ें बना ली जाती हैं। इन मेड़ों पर बीज को 4 सेंटीमीटर की गहराई पर बो दिए जाते हैं। बीज उग आने पर जब पौधों में दो पत्तियां आ जाएं तब पौधों को 8 से 10 सेंटीमीटर की दूरी छोड़कर बाकी पौधों को निकाल दिया जाता है। यह विधि अच्छी रहती है, क्योंकि इस विधि से बोने पर मूली की जड़ की बढ़वार अच्छी होती हैं और मूली मुलायम रहती हैं।

## खाद एवं उर्वरकः

गोबर की खाद या कम्पोस्ट 200 से 250 किंवटल, 100 किलोग्राम नाइटोजन, 50 किलोग्राम स्फुर तथा 100 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर आवयक है। गोबर की खाद, स्फुर तथा पोटाश की पूरी मात्रा और नाइट्रोजन की आधी मात्रा खेत की तैयारी के समय तथा नाइटोजन की शेष मात्रा दो भागों में बोने के 15 और 30 दिन बाद देनी चाहिए।

## निंदाई–गुड़ाईः

यदि खेत में खरपतवार उग आये हों तो आवयकतानुसार उन्हें निकालते रहना चाहिए। रासायनिक खरपतवारनाशी जैसे पेन्डिमेथीलिन 30 ई सी 3.0 किलोग्राम 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 48 घंटे के अन्दर प्रयोग करने पर प्रारम्भ के 30 से 40 दिनों तक खरपतवार नहीं उगते हैं। निंदाई–गुड़ाई 15 से 20 दिन बाद करना चाहिए। उसके बाद मिटटी चढ़ा देनी चाहिए। मूली की जड़ें मेंड़ से उपर दिखाई दे रही हों, तो उन्हें मिट्टी से ढँक दें अन्यथा सूर्य के प्रकाश के सम्पर्क से वे हरी हो जाती हैं।

**सिंचाई एवं जल निकासः**

बोवाई के समय यदि भूमि में नमी की कमी रह गई हो तो बोवाई के तुरंत बाद एक हल्की सी सिंचाई कर दें। वैसे वर्षा ऋतु की फसल में सिंचाई की आवयकता नहीं पड़ती है। परन्तु इस समय जल निकास पर ध्यान देना आवश्यक है। गर्मी की फसल में 4 से 5 दिन के अन्तराल पर सिंचाई की आवयकता पड़ती है। शरदकालीन फसल में 10 से 15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करते हैं। मेंड़ों पर सिंचाई का पानी आधी मेंड़ तक ही सिमित रखना चाहिए ताकि पूरी मेंड़ नमीयुक्त व भुरभुरी बनी रहे।

**प्रमुख कीट व रोगः**

**माहू–** हरे सफेद छोटे–छोटे कीट होते हैं। जो पत्तियों का रस चूसते हैं। इन कीटों के लगने से पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा फसल का उत्पादन काफी घट जाता है। इसके प्रकोप से फसल विपणन योग्य नहीं रह जाती है।

**रोकथाम–** इस कीट के नियंत्रण हेतु मैलाथियान 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से लाभ होता है। इसके अलावा 4 प्रतिशत नीम अर्क के घोल में किसी चिपकने वाले पदार्थ जैसे चिपकों या सेण्डोविट के साथ छिड़काव उपयोगी रहता है।

**रोयेंदार सुंडी–** कीड़े की सुंडी भूरे रंग की रोयेंदार होती है और ज्यादा संख्या में एक जगह पत्तियों को खाती हैं।

**रोकथाम–** इसके नियंत्रण के लिए मैलाथियान 10 प्रतिशत के चूर्ण का 20 से 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से सुबह के समय भुरकाव करना चाहिए।

**अल्टरनेरिया झुलसा–** यह रोग जनवरी से मार्च के दौरान बीज वाली फसल पर ज्यादा लगता है। पत्तियों पर छोटे घेरेदार गहरे काले धब्बे बनते हैं। पुष्प व फल पर अण्डाकार से लंबे धब्बे दिखाई देते हैं प्रायः यही रोग मूली की फसल पर लगता है।

**रोकथाम–** इसके नियंत्रण हेतु कैप्टॉन 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें। नीचे की प्रभावित पत्तियों को तोड़कर जला दें। पत्ती तोड़ने के बाद मैन्कोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

**फसल खुदाईः**

जब जड़ें पूर्ण विकसित हो जायें तब कड़ी होने से पहले मुलायम अवस्था में ही फसल की खुदाई कर लेनी चाहिए।

**पैदावारः**

मूली की पैदावार इसकी किस्में, खाद व उर्वरक तथा अंतःसस्य क्रियाओं पर निर्भर करती है। लेकिन उपरोक्त वैज्ञानिक विधि से खेती करने पर मूली की औसत उपज 200 से 350 क्विंटल प्रति हेक्टेयर के करीब होती है।

# सूचना तकनीक से सँवर रहा है किसानों का जीवन

**विनीत श्रीवास्तव एवं आस्था श्रीवास्तव**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

रोहिनी बरसै मृग तपै, कुछ कुछ अद्रा जाय,
कहै घाघ सुने घाघिनी, स्वान भात नहीं खाय।
शुक्रवार की बादरी रहे शनिचर छाय,
कहा घाघ सुन घाघिनी बिन बरसे ना जाय..

ये लोकोक्तियां उत्तर भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय जन कवि घाघ की है। न जाने ऐसे अनेकानेक लोकोक्तियां ग्रामीण जनजीवन में सदियों से प्रचलित हैं। हमारे किसान भाई इन्हीं के सहारे खेती–किसानी की व्यवस्था को समझते रहें है। मौसम के आगमन, खेती से जुड़ी जरूरतों, फसल चक्र, उत्पादन आदिकी जानकारी प्राप्त करते रहे हैं। इनका अपना महत्व है। लेकिन जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ी है, खेती पर दबाव बढ़ा है, ऐसे में हमारे किसान भाईयों को खेती के साधनों मसलन उन्नत बीज, खाद, कीटनाशक और हर खेत को पानी दिये जाने के साथ ही सही सूचना, समय पर मिले इसकी सबसे ज्यादा जरूरत है। बात चाहे मौसम पूर्वानुमानों की हो या कृषि संबंधी उचित सलाह की या फिर कृषि मंडी और कृषि बाजार की जानकारी का हमारे किसान भाई केवल कही–सुनी बातों पर न निर्भर रहें इसके लिए सरकार ने पूरा सूचना तंत्र विकसित किया है। वे इसका उपयोग करते हुए अपने घर बैठे खेती–किसानी के कार्य को बेहतर तरीके से कर सकते हैं। इसका कृषि में अधिक से अधिक उपयोग करके हम कृषि को नई दिशा दे सकते हैं, जिससे देश में अन्न और दूसरे कृषि व पशुधन से प्राप्त उत्पादों का उत्पादन बढ़ेगा और किसानों की वित्तीय स्थिति और मजबूत होगी।

रेडियो और दूरदर्शन की सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में अहम भागीदारी रही है। इसके जरिए किसानों को सूचना प्रदान करने का काम दशकों से चल रहा है। इन आयामों को बेहतर बनाने के साथ ही सरकार ने इसे और विस्तार दिया है और माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी, के निर्देशों के अनुरूप हमने दूरदर्शन का एक नया चैनल किसान चैनल शुरू किया है, जिसके जरिए हमारे किसान भाई खेती–किसानी से जुड़ी बहुविध सूचनाएं प्राप्त कर रहे हैं।

भारत डिजिटल क्रांति और मोबाईल क्रांति के दौर से गुजर रहा है। मोबाइल की पहुंच गांव–गांव तक हो गई है और मोबाइल के जरिए इंटरनेट का उपयोग करने वालों की संख्या में लगातार इजाफा हो रहा है। सरकार और किसान के बीच दो तरफा संवाद कायम करने में मोबाइल और इंटरनेट की अहम भूमिका निभा रहा है।

किसानों को सही समय पर सूचना देने के लिए सरकार की कई वेबसाईट, पोर्टल फोन सेवाओं के साथ कृषि एसएमएस की व्यवस्था के साथ ही कई तरह के ऐप शुरू किए हैं। कृषि एवं किसान मंत्रालय के कई पोर्टल हैं, जिनके जरिए हमारे किसान भाई सूचना प्राप्त कर सकते हैं। भारत सरकार का किसान पोर्टल– http://farmer.gov.in, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की वेबसाईट http://www.icar.org. in पर तो किसानों को उनसे जुड़ी जरूरी जानकारियां मिलती ही हैं, इसके साथ ही हाल ही में केवीके पोर्टल लांच किया गया है। इसके जरिए कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किसानों के हित में किए जाने वाले प्रर्दशन, बीज, बाजार आदि की तकनीकी जानकारी जिले स्तर से लेकर देशभर में दी जाती है। केवीके की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी प्रदान करने एवं उसकी उच्च स्तर पर निगरानी एवं प्रबंधन हेतु बनाए गए पोर्टल http://kvk.icar.gov.in/ पर उपलब्ध है।

विभिन्न तरह के मोबाईल ऐप के जरिए भी हमारे किसान भाई सुविधा प्राप्त कर सकते हैं। इनमें से प्रमुख हैं, किसान सुविधा ऐप, पूसा कृषि ऐप, भुवन ओलावृष्टि ऐप, फसल बीमा ऐप, एग्रीमार्केट ऐप, पशुपोषण ऐप आदि। इन सब ऐप्स को www.mkisan.gov.in के अलावा गूगल प्ले स्टोर से डाउनलोड किए जा सकते हैं। इन सब ऐप की अलग–अलग विशेषताएं हैं। किसान भाईयों की खेती संबंधी जरूरतों को ध्यान में रखकर इसे तैयार कराया गयाहै। जैसे कि किसान सुविधा एप पर किसानों को घर बैठे कृषि संबंधित सूचनाएं जैसे मौसम, बाजार भाव, फसलों की बीमारियों व कीट की पहचान व उपचार के साथ ही कृषि संबंधित विशेषज्ञ से सलाह की सुविधा है। इतना ही नहीं इस ऐप पर मौसम में आने वाले बदलाव को लेकर समय–समय पर अलर्ट भेजे जाते हैं।

इसी तरह पूसा कृषि ऐप के जरिए कृषि एवं बागवानी की उन्नत किस्में तथा नवीनतम तकनीकियों की जानकारी दी जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा तैयार किए गए नई फसल किस्मों के बारे में जानकारी उपलब्ध है। हम इसके जरिए कृषि के व्यवसायीकरण से जुड़ी सूचनाएं भी प्राप्त कर सकते हैं। हमारे फसल बीमा ऐप पर किसान भाईयों के लिए फसल बीमा से जुड़ी सारी जानकारी उपलब्ध कराई गई है। इसके जरिए किसान बीमा प्रीमियम, बीमा की राशि, सब्सिडी आदि की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

हमारा किसान आपदाओं से काफी प्रभावित होता है। फसल बर्बादी के आकलन को लेकर उहापोह की स्थिति होती है। इसके लिए हमने भुवन ओलावृष्टि ऐप विकसित किया है। इसके जरिए ओलो से हुई फसल बर्बादी का अनुमान लगाया जा सकता है। यह

बहुत ही सहज है। राज्य सरकारों के हमारे कृषि अधिकारी अपने मोबाइल टैबलेट में ये ऐप डालकर खेत में जाएगा, बर्बाद हुई फसल का फोटोखींच कर भुवन ऐप पर डाल सकेगा। इससे किसानों को मुआवजा देने की प्रक्रिया आसान हो जाएगी, सही आकलन हो सकेगा और जल्द मुआवजा मिल पाएगा।

एग्रीमार्केट ऐप के जरिए किसान 50 किलोमीटर के दायरे मेंमंडियों के बाजार भाव की जानकारी प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा इस ऐप से सारे देश व राज्य में अधिकतम कीमत कहां पर है, उसकी जानकारी भी ले सकता है। राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड ने पशुपोषण ऐप विकसित किया है। इस ऐप के जरिए किसानों को पशुओं के नस्ल, दूध की मात्रा के अनुरूप चारे के विषय में सुझाव दिया जाता है।

किसान अपने घर बैठे किसान कॉल सेंटर में 18001801551 पर निःशुल्क फोन करके अपनी कृषि समस्या का समाधान पा सकता है। साथ ही समस्या का जो जवाब दिया जाता है उसको संक्षिप्त में उनकी भाषा में एसएमएस द्वारा संदेश भेजा जा रहा है। अभी तक कुल 1150 करोड़ से ज्यादा मोबाईल संदेश भेजे गये हैं।

यदि किसान निरक्षर या कम पढ़े–लिखे हैं तो उन्हें रिकार्ड किया हुआ संदेश भेजा जाता है। इसके साथ ही हमारे 650 कृषि विकास केंद्रो से लगातार किसानों को उनके क्षेत्र के अनुरूप जरूरी सूचनाएं मुहैया कराई जाती हैं। हमारे किसान जितना ज्यादा सूचनाओं से समृद्ध होंगे, खेती–बाड़ी उतनी ही बेहतर होगी। किसान भाईयों से ये अपेक्षा है कि इन सूचना तंत्रों से जुड़कर वे इनका लाभ लें।

# कद्दू की उन्नत खेती

**अरविंद परमार**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

## कद्दू की खेती :

कद्दू को हलवा कद्दू के नाम से भी जाना जाता है सब्जियों की खेती में कद्दू एक अहम् भूमिका निभाता है। कद्दू एक ऐसी सब्जी वाली फसल है जिसको बिना कोल्ड स्टोरेज के लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता हैप् कद्दू को सब्जी बनाने के अलावा खीर बनाने में भी उपयोग किया जाता है कद्दू में विटामिन–"A" पाया जाता है। कद्दू के फूल में फल की तुलना में अधिक पोषक तत्त्व पाया जाता हैप् कद्दू उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। भारत के ओड़िसा राज्य का कद्दू उत्पादन में प्रथम तथा मध्य प्रदेश का तीसरा स्थान है। यह बुआई के 75–180 दिन में परिपक्व हो जाता है।

## जलवायु और मिटटी :

यह गर्म मौसम की फसल है। बीजों के अंकुरण के लिए 18 डिग्री सेल्सियस तथा वृद्धि के लिए 25–35 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। फसल को ठंड व पाले से अधिक हानि होती है। कद्दू सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है, लेकिन उचित जल निकास वाली जीवांसमयुक्त बलुई दोमट भूमि सर्वोत्तम होती है।

## खेत की तेयारी :

कद्दू वर्गीय सब्जियों के लिए बलूई दोमट भूमि जिसमें जल निकास का उत्तम प्रबंध हो उपयुक्त मानी जाती है। इसकी खेती नदियों के किनारे भी की जाती है। कद्दू की खेती के लिए 6–7 पी. एच. वाली मृदा उपयुक्त मानी जाती है। खेत की 3–4 जुताई करके मृदा को भुरभुरी बना लेते है, जिसमे बीज की बुआई करते है। बीज की बुआई, खेत में नमी की पर्याप्त मात्रा रहने पर ही करनी चाहिए जिससे बीजों का अंकुरण एवं वृद्धि अच्छी प्रकार हो।

## खाद एवं उर्वरक प्रवंधन :

कद्दू की अधिक पैदावार के लिए 25–30 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद को मिटटी में खेत की तेयारी के समय मिलाना चाहिए, जिससे उत्पादन में बढोतरी होती है तथा फलो का आकर भी बढ़ता है।

## बुआई का समय एवं विधि :

कद्दू की बुआई गर्मी के दिनों में फरवरी से मार्च के अंत तक कर देना चाहिए। जिसमे 1–5 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। खेत को अच्छे प्रकार से तेयार करके "V" आकार की पाल बनाकर कद्दू के बीजों को पाल के किनारे पर पौधे से पौधे की दूरी 2.5–3.0 मीटर वा कतार से कतार 40–50 सेंटीमीटर की दूरी पर लगाना चाहिए। बीजों को लगाते समय एक स्थान पर 2–3 बीज तथा 3–5 सेंटीमीटर की गहराई पर लगाना चाहिए। बीज की बुआई के पश्चात् जहां पर बीज लगाया गया हो वहां पर हलकी सिंचाई कर देते है जिससे बीजो का अंकुरण अच्छे से हो सके।

## सिचाई :

खरीफ के मौसम में सिचाई की कम आवश्यकता होती है। गर्मी के दिनों में तापमान अधिक होने के कारण सिचाई की अधिक आवश्यकता होती है। इस मौसम में 4–7 दिन के अंतराल पर सिचाई करते रहना चाहिए। फूल आने की अवस्था में सिचाई में देरी नहीं करनी चाहिए, क्योकि इस समय सिचाई में देरी होने पर उत्पादन में भारी गिरावट आ जाती है।

## खरपतवार नियंत्रण :

कद्दू की फसल में अधिक सिचाई के कारण खेत में खरपतवार अधिक पनपते हैं। खरपतवार के नियंत्रण के लिए खेत की निदाई गुडाई समय समय पर करते रहना चाहिए, क्योकि खरपतवार मिटटी में उपस्थित पोषक तत्त्वों को ग्रहण कर लेते हैं, जिसके कारण कद्दू का उत्पादन कम होता है।

## फलो की तुड़ाई :

कद्दू के फलों को बाजार में कच्चे और पक्के दोनों प्रकार के फलों को बेचा जाता है। कच्चे फलों को फल लगने के 25–30 दिन के भीतर फलों की तुड़ाई कर लेनी चाहिए। फलों को धार दार चाकू या हँसिये की सहयता से काटना चाहिए, जिससे कि पूरे पौधे को झटका ना लगे।

## उपज एवं भंडारण :

कद्दू की उपज औसतन 200–300 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। कच्चे और पक्के फलों को 20–25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर भंडारित करना चाहिए।

## कद्दू के कीट एवं रोग प्रबंधन :

**कद्दू का लाल कीड़ा–** इस कीट के शिशु और व्यस्क दोनों ही हानि पहुँचाते हैं। यह कीट जमीन के अन्दर अंडे देता है। अंडे से निकली इल्ली पौधे की जड़ो को खाती है, जिससे जड़ों में फफूंद लग जाती है और पूरा पौधा सूखा जाता है। व्यस्क कीट पोधे की कोमल पत्तियों को खाते हैं। इस कीट का वयस्क हल्के पीले लाल रंग का होता है। यह कीट सुबह तथा शाम को अधिक हानि पहुंचाता है। यह फूलों और कोमल फलों को भी खाते हैं।

**रोकथाम के उपाय–** खेत की समय समय पर निदाई–गुड़ाई करते रहना चाहिए।

- फल को जमीन पे टिकने नहीं देना चाहिए
- मेड की घास को निकाल देना चाहिए
- 5 प्रतिशत नीम तेल को पानी में मिलाकर छिडकाव करना चाहिए।
- फ्युरोडान 3 मिली. का छिडकाव करना चाहिए।
- मेलाथिओन 500 मिलीग्राम को 1000 लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करना चाहिए

**फल मक्खी–** यह पौधे के कोमल भाग जैसे फूलों पर अपने अंडे देती है। अंडे से सूंडी निकलकर फलों में प्रवेश कर जाती है तथा फल को अन्दर ही अन्दर खोखला कर देती है। इसका व्यस्क फलों व पत्तियों पर शहद जैसा चिपचिपा पदार्थ छोड़ देता है।

**नियंत्रण के उपाय –**

- छतिग्रस्त फलों को निकालकर नश्ट कर देना चाहिए।
- फेरोमोंन प्रपंच का उपयोग करना चाहिए।
- येलो स्टिकी प्रपंच को खेत में लगाना चाहिए।
- नीम तेल को पानी में मिलाकर छिडकाव करना चाहिए।
- फेंथिओंन का छिडकाव करना चाहिए।

**पाउडरी मिल्ड्यू –** इस बीमारी से ग्रसित पौधे की निचली पत्तियों पर सफेद रंग का पाउडर जमा हो जाता है तथा कभी–कभी निचली सतह साफ होती है एवं उपरी सतह पर सफेद रंग के धब्बे दिखाई देते हैं इसकी बेल पर भी सफेद पावडर जमा हो जाता है।

**एन्थ्रेकनोज –**

पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे रंग के धब्बे और पत्तियों पर छेद हो जाते हैं तथा फलों पर सफेद रंग के धब्बे दिखाई देते हैं और अंत में पत्तियां हल्की पीली होकर गिर जाती हैं।

**नियंत्रण के उपाय –**

- छतिग्रस्त भाग को निकालकर नश्ट कर देना चाहिए।
- 2–3 साल का फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- बोरडेक्स मिक्सचर का छिडकाव करना चाहिए।

# आपातकाल स्थिति में पशुओं के लिए सुबबूल के पौधों से हरे चारे की व्यवस्था

**पंकज कुमार गुप्ता, आशुतोष गुप्ता, सात्विक सहाय बिसारिया एवं नीरज वर्मा**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

**सारांशः**

सुबबूल 16वीं शताब्दी के शुरुआत से ही फिलीपींस में रोमंथी पशुओं के लिए एक महत्वपूर्ण चारे का श्रोत रहा है। सुबबूल से ईंधन, लकड़ी एवं पशुओं के लिए चार भी प्राप्त होता है जो आजकल पशुओं के लिए हरे चारे के रूप में प्रयोग हो रहा है। इस हरे चारे के पौधे का पोषण मान क्रमशः 70% सुपाच्यता, 3–4.5% नाइट्रोजन, 6% ईथर एक्सट्रेक्ट, 6–10% राख, 30–50% नाइट्रोजन फ्री एक्सट्रेक्ट, 0.8–1.2% कैल्शियम एवं 0.23 –0.2% फोस्फोरस होता है।

**सुबबूल का परिचयः**

| | |
|---|---|
| वानस्पतिक नामः | <u>ल्यूयूसिअना</u> <u>ल्युकोसिफेला</u> (लैम) डी विट |
| परिवारः | फैबेसी |
| कुलः | लेगुमिनेसी |
| उपपरिवारः | मिमोसोइडी |
| जनजातिः | मिमोसी |

सुबबूल व्यापक रूप से पूरे उष्णकटिबंधीय में वितरित है और 16 वीं शताब्दी में फिलीपींस में जुगाली करने वाले पशुओं के लिए एक फीड के रूप में पेश किया गया है। बाद में यह पूरे एशिया–प्रशांत क्षेत्र में फैल गया। दक्षिण–पूर्व एशिया मध्य एशिया और अफ्रीका के कुछ हिस्सों में निर्वाह और अर्ध–वाणिज्यिक किसानों द्वारा ईंधन की लकड़ी के रूप में अत्यधिक मूल्यवान माना जाता है। यह उत्तरी ऑस्ट्रेलिया में पशुओं के उत्पादन के लिए घास के साथ हेजेरो सिस्टम में लगाया जाता है, और दक्षिण–पूर्व एशिया और अफ्रीका के कुछ हिस्सों में एक हेजेरो प्रजाति के रूप में भी जाना जाता है। इसको 5.0 से ऊपर पीएच के साथ साथ अच्छी तरह से सूखी मिट्टी की आवश्यकता है होती है। अर्थात् जल निकास कि व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। इसके लिए उप–आर्द्र और आर्द्र जलवायु 650–1,500 मिमी. और 3,000 मिमी. वार्षिक वर्षा लाभकारी मानी जाती है इसके अलावा ये 7 महीने तक शुष्क मौसम को सहन कर सकता है।

सुबबूल के पेड़ कटाई या चराई के लिए बहुत ही संवेदनशील है और इसके पत्ते में जुगाली करने वाले उत्पादन के लिए उच्च पोषक मूल्य होते हैं। खाद्य अंश के लिए पोषक तत्व हैं। विशेष रूप से अन्य चारा पेड़ की तुलना में पर्णवृष्टि के दौरान ज्यादातर चराई वाले जानवरों के लिए अत्यधिक स्वादिष्ट होती है,। इसमें एक गैर–प्रोटीन अमीनो एसिड मीमोसिन होता है, जिसमें जानवरों पर एंटीमाइटोटिक और डिप्लिटरी प्रभाव होता है। तरुण पत्ती में सांद्रता 12ः तक हो सकती है और खाद्य अंश में आमतौर पर 4–6ः मिमोसिन होता है (मिमोसिन एक हानिकारक तत्व है जो इस पौधो में पाया जाता है इसीलिये पशुओं को पूरा का पूरा हरे चारे के रूप में नहीं दिया जाना चाहिए)। यह एक अत्यधिक आत्म–संगत टेट्राप्लोइड ($2n = 4x = 104$) है और इसका अपेक्षाकृत संकीर्ण आनुवंशिक आधार है। यह माना जाता है कि एल. पुल्वरुलेंटा और एल. लांसोलेटा के बीच एक एम्फिडिप्लोइड के रूप में विकसित हुआ है। एल. ल्यूकोसेफला अन्य टेट्राप्लोइड प्रजातियों के साथ आसानी से हाइब्रिड करता है। एल. पल्लिडा, एल. डाइवर्सिफोलिया, एल. कंफर्टिलफ्लोरा और डिप्लॉयड प्रजाति के साथ एल. एस्कुलेंटा, एल. रेटुसा, एल. सल्वाडोरेंसिस और एल. शैनोनियी। दूसरी अन्य द्विगुणित प्रजातियों के साथ हाइब्रिडाइजेशन को प्राप्त करना अधिक कठिन है।

**चार प्रकार के सुबबूल हैंः**

**1 हवाईयन प्रकार–** पौधे छोटे झाड़ीदार और उल्लेखनीय रूप से सूखे व सहिष्णु होते हैं। यह सूखा प्रभावित क्षेत्रों में पहाड़ी इलाकों के अनुकूल हैं। यह एक विपुल बीज उत्पादक है और चारे के उद्देश्य से अच्छा है। झ–341 एक हवाईयन किस्म है।

**2 साल्वाडोर प्रकार–** लंबा, पेड़ की तरह और तेजी से बढ़ रही अधिकतम वार्षिक बायोमास उत्पादन। हवाईयन प्रकारों की तुलना में बड़े पत्ते, फली और बीज। झ–8 चारे के लिए उपयोगी है।

**3 पेरू–** लंबा और बड़े पैमाने पर शाखाओं का प्रकार और चारे के उद्देश्य के लिए आदर्श है।

**4 कनिंघम–** यह सल्वाडोर और पेरू प्रकार के बीच एक क्रॉस है।

**प्रजातियाँ/किस्में :**

**सबबुल सीओ–1 (पी)–** यह टीएनएयू, कोयम्बटूर द्वारा सुबबूल (<u>लेउकेना</u> <u>ल्यूकोसेफला</u>) की विविधता वाले विशालकाय एलपीएल के –28 का चयन है और 1984 में तमिलनाडु राज्य के लिए जारी किया गया। उच्च प्रोटीन और सूखे सहिष्णुता के साथ चयन उच्च उपज (हरा पत्ती चारा 85 टी/हेक्टेयर) है।

**एफडी 1423–** यह ज्छ।न् कोयम्बटूर द्वारा सुबबूल (<u>लेउबेना</u> <u>डाइवर्सिफोलिया</u>) का एक परिचय है और 1999 में तमिलनाडु राज्य के लिए जारी किया गया। यह अत्यधिक मधुर सहिष्णु है और बारिश की स्थिति के लिए उपयुक्त है। हरी पत्ती की पैदावार 55 टन/ हे0 है।

**कृषि–जलवायुः**

**परिस्थितिकी–** सुबबूल गर्म क्षेत्रों के लिए सबसे उपयुक्त है और 500 से 2000 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में 22 और $30^0$C के बीच अच्छी तरह से बढ़ता है। इसकी जड़ें मजबूत और गहरी होने के कारण, पेड़ अत्यधिक सूखा प्रतिरोधी है। यह 500 मीटर से नीचे की ऊँचाई तक सीमित है, लेकिन बारिश, धूप, हवा के झोंके, हल्की ठंढ और सूखे में बदलाव भी होता रहता है।

**मिट्टी–** यह जल भराव का सामना नहीं कर सकता, पौधों की जड़ों के पास जल का बने रहना घातक होता है। इसके लिए गहरी अच्छी तरह से सूखी तटस्थ मिट्टी की आवश्यकता होती है। इसके अलावा ये क्षारीय एवं अम्लीय मिट्टी उपयुक्त मानी जाती हैं। इसे खड़ी ढलानों, पहाड़ी इलाकों, बजरी क्षेत्रों और रेतीले इलाकों में भी उगाया जा सकता है। रेंज, रोडसाइड प्लांट, चारागाहों में, आदि के रूप में यह कई तरह की परिस्थितियों में आसानी से रोपा जा सकता है। सुबबूल का पौधरोपण करने से पहले झाड़ियों की सफाई, जुताई एवं समतल किया जाना चाहिए। सुबबूल के पौधे क्षारीय मिट्टी में नीचे बहुत अच्छी तरह से पनपता एवं बढ़ता है। इसके अलावा सूखी मिट्टी में भी अच्छे तरीके से बढ़ता है। सुबबूल का विकास, रेतीले, अम्लीय और बलुई मिट्टी में औसत है। इसी क्रम में, इस पौधे की वृद्धि दलदली, नम भूमि और उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में औसत से कम है।

**सुबबूल की वानस्पतिक विशेषताएंः**

आमतौर पर पत्तियां द्विपदी 15 से 20 सेमी लंबी, 10 से 15 जोड़ी पिन्नेट की पत्तियां होती हैं। इसके अलावा सामान्यतः पुष्पक्रम गोलाकार होता है और फूल सफेद होते हैं।

**जुताई पद्धतिः**

सुबबूल की रोपाई मई–जून या सितंबर–अक्टूबर में बारिश की शुरुआत के साथ की जा सकती है। बीज की व्यवहार्यता और बीजों के अपेछा अधिक होती है, लेकिन हार्ड सीड कोट में निष्क्रियता होती है। सुबबूल के जल्दी अंकुरण के लिए बीज को कम से कम चार मिनट के लिए सान्द्र सल्फ्यूरिक एसिड में डुबोया जाना चाहिए इसके तुरंत बाद इसे 80ºC पर 4 मिनट के लिए गर्म पानी में धोया या डुबोया जाना चाहिए। बुवाई से पहले बीज को लगभग एक घंटे तक धुप में सुखाना चाहिए।

**बीज दरः**

सुबबूल की बुवाई के लिए 3–4 किलो./हे. की बीज दर की सिफारिश की जाती है। इसकी बुआई का सबसे उचित समय फरवरी–मार्च के दौरान नर्सरी में या पॉलीथीन बैग में या इन सीटू में 2–3 सेमी. गहराई पर की जाती है। मुख्य क्षेत्र जहाँ पर सीडलिंग (6–8 पत्तियों के साथ 1.5 से 3 महीने) लगाए जाते हैं, आमतौर पर चारे की शुद्ध फसल के लिए 1 x 0.1 मीटर की दूरी की सिफारिश की जाती है।

**रिक्ति अपनानाः**

इस प्रकार के चारा वाले फसलों में रिक्तियां भी अपनाई जाती हैं, जो सबसे ज्यादा प्रचलन में 1.27 मी. x 1.27 मी. (50'' x 50'') (यानी 6200 पौधे /हेक्टेयर) हैं। इसके अलावा और भी कई हैं जैसे 3 x 1.5 मी. (2222 पौधे/ हेक्टेयर)। हालांकि, अनुशंसित रिक्ति 1.5 मी. x 1.5 मी. (4445 पौधे/हेक्टेयर) हैं। अन्तरसश्यन की खेती दूसरे वर्ष से संभव नहीं हो सकती है।

**कीट और रोगः**

सुबबूल जैसे पौधे गंभीर कीट और बीमारियों से मुक्त होते हैं, लेकिन ये चारे वाली फसल होने के कारण कुछ कूदने वाले जूँ (सिलिद) की वजह से पौधा अति संवेदनशील हो जाता है, जो कुछ क्षेत्रों में गंभीर मलिनकिरण (पत्तियों का पौधों से अलग होना) और मृत्यु दर का कारण बनता है। कुछ किस्में गमोसिस के लिए अति संवेदनशील होती हैं, जो कि फ्यूजेरियम या फाइटोफ्योरा फंगस सबसे अधिक प्रभावित होती हैं। लीफ स्पॉट फंगस भी नम स्थितियों में लग सकती है। ये सभी रोग तभी लगते हैं जब परिस्थितियां (पर्यावरण) इनके अनुकूल होती है।

**उपज और रोटेशनः**

ये बहुवर्षीय चारे की पौधो की फसल है तथा ये पौधे बीज बोने के 6 महीने की शुरुआत में पहली बार काटने के लिए तैयार होंगे। हालांकि, प्रारंभिक कटाई तब तक नहीं की जानी चाहिए जब तक कि ट्रंक कम से कम 3 सेमी व्यास में न हो गया हो या पौधे ने एक बीज उत्पादन चक्र पूरा कर लिया हो। बाद की कटिंग को 45–80 दिनों में एक बार ग्रोथ और सीजन के आधार पर किया जा सकता है। सामान्यतः इसका औसत उपज 70 टन/हेक्टेयर है। आमतौर पर किसान 4 साल का रोटेशन अपनाते हैं। तथा वे 3 कोपपिस फसलों के लेते हैं। दूसरे रोटेशन के दौरान, प्रत्येक स्टेम में केवल 2 कॉपपिस शूट बनाए रखे जाते हैं। पल्पवुड के लिए बिक्री मूल्य रुपये पर माना जाता है। (लगभग 1000 रुपया/टन)।

पशुपालन और सामाजिक वानिकी विशेषज्ञों का कहना है कि तेजी से उगने वाले चारे के पेड़ के पत्तों से बने नुट्रिएस बिस्कुट सुबबूल (लेउकेना ल्यूकोसेफला) को मवेशियों को खिलाया जा सकता है और दूध की पैदावार बढ़ा सकते हैं। सुबबूल, जो मध्य अमेरिका में उत्पन्न हुआ था, अब भारत में व्यापक रूप से चारे की फसल के रूप में उगाया जाता है।

**केस स्टडीः**

सुबबूल बिस्किट का उत्पादन तमिलनाडु के कुछ जिलों में छोटे पैमाने पर शुरू किया गया था। इन बिस्कुटों का उत्पादन करने के लिए तंजावुर जिले के सेंगिपट्टी गांव में एक कारखाना स्थापित किया गया है। तमिलनाडु के पुदुकोट्टई में दानिदा पशुधन विकास परियोजना के पी मारियादास कहते हैं, जिन्होंने तंजावुर में

कृषि–वानिकी विशेषज्ञ के. गणेशन के साथ मिलकर सबसे पहले सबबुल बिस्किट विचार का प्रस्ताव रखा, ''बिस्कुट का उत्पादन परिवहन लागत और अपव्यय को कम करता है, और मवेशी दूध की उच्च उत्पादन करते हैं।

सबबूल के पत्तों को इकट्ठा किया जाता है और बिस्कुट का उत्पादन करने के लिए गुड़ और हड्डी के भोजन के साथ मिलाया जाता है। फीड के पोषक मूल्य को बढ़ाने के लिए प्रोसोपिस पॉड्स और राइस ब्रान भी मिलाया जाता है। बिस्कुट अन्य फीड की तुलना में अधिक सुपाच्य हैं और पशु सबबूल बिस्कुट के 20 प्रतिशत से अधिक का उपयोग करते हैं। सबबूल बिस्कुट को भी सबबूल के पत्तों के लिए पसंद किया जाता है।

दुधारू पशुओं और भैंसों के परीक्षण से पता चलता है कि बिस्कुट दूध उत्पादन को बढ़ाते हैं। दूध देने की अवधि और दूध की पैदावार दोनों में वृद्धि हुई है। उपज शहरी केंद्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक थी। कुछ शहरी केंद्रों में, दूध की पैदावार 8 प्रतिशत बढ़कर 10 प्रतिशत हो गई और ग्रामीण क्षेत्रों में सुधार 10 प्रतिशत से बढ़कर 20 प्रतिशत हो गया।

घटते बीज संख्या के साथ चारे की गुणवत्ता में सुधार होता है और आईजीएफआरआई प्रजनकों ने सुबबूल की कम बीज उत्पादक किस्मों का विकास किया है। विशेषज्ञों का कहना है कि सुबबूल एक आदर्श वृक्षारोपण फसल है, जिसका उपयोग कृषि–वानिकी के लिए किसानों द्वारा किया जा सकता है। सुबबूल की खेती उन सीमांत किसानों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होगी, जिनके पास चारे की खेती के लिए बड़ी भूमि की पहुंच नहीं है।

# पौधों में पर्णीय व छिड़काव का महत्व

**शिखा, दीपरंजन सरकार**
मृदा विज्ञान, कृषि विज्ञान केंद्र, रानीचौरी, टिहरी गढ़वाल, 249199, उत्तराखंड
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन, कृषि विज्ञान संस्थान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 221005 उत्तरप्रदेश

यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि, टिकाऊ कृषि सतत् विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस स्थायी कृषि को खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने और प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रणालियों की जैव विविधता को बनाए रखने के लिए इसका नेतृत्व करना तथा सतत् कृषि का वैश्विक दृष्टिकोण भी होना आवश्यक है। इसलिए मिट्टी और जल संसाधनों दोनों का संरक्षण आवश्यक माना जाता है और साथ ही खनिज और जैविक उर्वरकों का उपयोग भी किया जाता है। पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने के लिए बहुत से माध्यम अपनाये जाते हैं, जैसे कि उर्वरकों को सीधे मिट्टी में डालकर या उसका घोल बनाकर सीधे पौधों की पत्तियों में छिड़काव कर देने से आवश्यक पोषक तत्व पौधों को आसानी से प्राप्त हो जातें हैं। पर्ण छिड़काव की उचित समयावधि, अंतः व बहिर्जात और पर्यावरणीय कारक जो पत्तियों के पोषण को प्रभावित करते हैं, खनिज उर्वरकों की पर्याप्तता खाद्य फसलों की गुणवत्ता और नैनो–पर्ण पोषण के साथ–साथ कटाई पश्चात फसलों की गुणवत्ता को भी प्रभावित करते हैं।

पर्णीय छिड़काव में उर्वरक को सीधे पौधे की पत्तियों पर लगाना होता है क्योंकि इसे मिट्टी में डालने का विरोध किया जाता है। एक पौधा पत्ते के माध्यम से पोषक तत्वों को बहुत जल्दी लेता है जितना कि यह जड़ और तने से लेता है। वर्तमान परिस्थितियों में केवल उर्वरकों पर कुल कृषि उत्पादन लागत का 35–40 प्रतिशत खर्चा हो रहा है, जिसके कारण विभिन्न फसलों में उर्वरकों का उपयोग फसलों की आवश्यकतानुसार किसान नहीं कर रहा है। अधिकांश फसलों का कम बाजार मूल्य मिलने, किसानों की आर्थिक स्थिति तथा उर्वरकों की बढ़ती कीमतें कम उत्पादन का कारण हैं। इस विधि में फसलों को आवश्यक मुख्य एवं गौण पोशक तत्वों जैसे नत्रजन, सल्फर, जिंक, लोहा, मैंग्नीज तथा तांबा आदि का प्रयोग फसलों पर पर्णीय छिड़काव करके पोषक तत्वों की पूर्ति करते हुए अधिक फसलोत्पादन लिया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन एवं सघन फसल प्रणाली से अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु उर्वरकों का संतुलित उपयोग करना अति आवश्यक हो गया है। हमारे देश में फसल मांग के अनुसार उर्वरकों का उतपादन किया जा रहा हैं परन्तु उनका 70 प्रतिशत तक ही वर्तमान में पूर्ति हो पा रही है। संतुलित मात्रा में उर्वरकों का उपयोग न करने पर फसलों की उन्नत किस्मों से अधिक उत्पादन प्राप्त नहीं हो रहा है। पर्णीय छिड़काव के लिए आमतौर पर पानी में घुलनशील पाउडर या तरल उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। पर्णीय छिड़काव आमतौर पर उर्वरकों की तुलना में कम केंद्रित होते हैं जो मिट्टी पर रखे जाते हैं। बहुत से लोग फेलियर स्प्रे के लिए प्राकृतिक सामग्री का उपयोग करते हैं जैसे कि केल्प, कम्पोस्ट टी, वीड टी, हर्बल टी और फिश इमल्शन। पर्णीय छिड़काव का उपयोग सुबह ठंडी हवा में करना चाहिए तथा तब तक करना चाहिए जब तक पत्ते से मिश्रण टपकना शुरू ना हो जाये।

पौधों में इस छिड़काव को चिपकाने के लिए किसी भी कीटनाशक, साबुन या बागवानी तेल का प्रयोग कर सकते हैं साथ ही पत्तियों के अधोभाग को स्प्रे करना न भूलें। तनाव का अनुभव करने वाले पौधों के लिए पर्ण स्प्रे उर्वरक एक उत्कृष्ट अल्पकालिक समाधान है। हालांकि, हमेशा कार्बनिक पदार्थों के साथ मिट्टी का निर्माण करना सबसे अच्छा होता है।

पिछले कुछ वर्षों में खनिज उर्वरकों के उपयोग को कम करने के लिए एक स्थिर प्रवृत्ति रही है, विशेष रूप से मिट्टी पर लागू पोषक तत्व जैसे – एन, पी और के और उनके उपयोग में सात गुना कमी आई है तथा पर्ण स्प्रे पर रुचि बढ़ी है। पोषक तत्वों के अनुप्रयोग के तरीकों से जुड़े कई लाभों के परिणामस्वरूप, जैसे कि मिट्टी की स्थिति की परवाह किए बिना, पौधों की जरूरतों के लिए तेजी से और प्रभावी प्रतिक्रिया हो रही है। इसके अलावा, फसलों की वृद्धि और विकास के दौरान पर्णीय छिड़काव उनके पोषक तत्वो के संतुलन में सुधार कर सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उपज, गुणवत्ता या दोनों में वृद्धि हो सकती है।

पौधों में पोषक तत्व देने के लिए कई तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है, जिसमें मिट्टी और पत्ते या छिड़काव के तरीके शामिल हैं। फोलियर एप्लिकेशन को सबसे आम तरीकों में से एक माना जा सकता है, जो पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों को पर्याप्त मात्रा में वितरित करने और पौधों की पोषण स्थिति में सुधार करने के साथ–साथ फसल की उपज और इसकी गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है। कई तनावों (जैसे गर्मी, सूखा, ठंड, आदि) के नकारात्मक नुकसान को कम करने और विभिन्न पौधों के पोषण संबंधी यौगिकों (सरल शर्करा, डाईसकराइड्स) विकास नियामकों और उत्तेजक, अमीनो एसिड, पेप्टाइड श्रृंखला, कीटनाशक और नैनोमैटेरियल्स का छिड़काव सहित विभिन्न प्रयोजनों के लिए पर्णीय छिड़काव का उपयोग किया जा सकता है। हालांकि, पादप वृद्धि और विकास या पादप शरीर क्रिया विज्ञान और जैव रसायन विज्ञान के साथ–साथ पादप रोगों में इसकी भूमिका के कारण उर्वरक प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण है। पौधों में पोषक तत्वों का निषेचन पर्ण स्प्रे या एक या एक से अधिक आवश्यक पौधे के अनुप्रयोग के रूप में किया जाता है। उर्वरकों के पारंपरिक मिट्टी अनुप्रयोगों की आपूर्ति करने के लिए उपरोक्त जमीन के पौधों के हिस्सों पर खनिज पोषक तत्व का उपयोग किया जाता है। बड़ी संख्या में पोषक उर्वरक पानी में घुलनशील होते हैं, जो सीधे पौधों के हवाई हिस्सों में लागू हो सकते हैं। लागू पोषक तत्व पत्तियों को या तो कई चरणों के माध्यम से छल्ली में प्रवेश कर सकते हैं या प्लांट सेल में प्रवेश करने से पहले स्टोमेटा के माध्यम से प्रवेश कर सकते हैं जहां उनका उपयोग उपापचय में किया जा सकता है।

**पर्णीय छिड़काव से लाभः**

- खड़ी फसल में उर्वरकों का पर्णीय छिड़काव करने पर इनकी बहुत कम मात्रा ही लगती है। जो किसान को आर्थिक दृश्टि से अधिक लाभकारी सिद्ध हुई है।
- मिट्टी में प्रयोग किये उर्वरकों का केवल 40 प्रतिशत ही उपयोग होता है एवं पौधे इनका पूरा उपयोग नहीं कर पाते हैं। अतः 60 प्रतिशत उर्वरक नष्ट हो जाते हैं। परिणामस्वरूप, ये उर्वरक मिट्टी एवं पानी की गुणवत्ता को खराब करते है।। पर्णीय छिड़काव से उर्वरकों का प्रयोग करने पर इनके नश्ट होने से रोका जा सकता है।
- बारानी तथा शुष्क खेती में नमी की कमी होने पर पौधों की जड़ों के द्वारा पोशक तत्वों को लेने में कठिनाई होती है। अतः ऐस क्षेत्रों में फसलों में उर्वरकों का पर्णीय छिड़काव ही उपज बढ़ाने के लिये अधिक लाभदायक पाया गया है।
- भूमि में उरकर दिये गये उर्वरकों का अधिकांश भाग फसलों के पहले या साथ उग रहे खरपतवार अपनी वृद्धि के लिए उपयोग कर लेते है। परिणामस्वरूप पौधे उचित बढ़वार नहीं कर पाते हैं। अतः इसे पर्णीय छिड़काव द्वारा कम किया जा सकता है।
- पर्णीय छिड़काव विधि में उर्वरक घोल को कीटनाशी एवं कवकनाशी दवा के साथ मिलाकर भी छिड़काव किया जा सकता है। अतः उर्वरकों का पर्णीय छिड़काव बिना अतिरिक्त खर्च करके भी किया जा सकता है।
- भूमि में पर्याप्त मात्रा में हवा, पानी, जीवाश्म पदार्थ तथा लाभदायक जीवाणुओं के उपस्थित होने पर ही फसलों पोशक तत्व ग्रहण करती हैं। मृदा में इनमें से किसी एक तत्व की भी कमी होने पर फसलें उर्वरकों का पूरा–पूरा लाभ नहीं उठा पाती है। ऐसी स्थिति में फसलों को पर्णीय छिड़काव द्वारा पोशक तत्व प्रदान करना ज्यादा लाभकारी पाया गया है।
- लवणीय मृदाओं में नत्रजन का अमोनिया गैस के रूप में नश्ट होने का अंदेशा रहता है। वहां पर नत्रजन की हानि को यूरिया का पर्णीय छिड़काव करके बचाया जा सकता है।
- जलमग्न भूमियों में नत्रजन का डिनाइट्रीफिकेशन हो जाता है। अतः इस विधि के प्रयोग से नत्रजन की हानि को कम किया जा सकता है।
- सूक्ष्म तत्व जो मृदा में जाकर स्थिर हो सकते हैं, इस विधि से उनकी हानि को कम किया जा सकता है।
- जब तत्काल प्रतिक्रिया की आवश्यकता हो, तो पीक अवधि के दौरान पोषक तत्वों की आपूर्ति करना चाहिए।
- जस्ता और लोहे जैसे कुछ पोषक तत्वों के साथ पौधों को प्रदान करना, जो रूट अपटेक के लिए आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकता है।
- मृदा अनुप्रयोग व्यावहारिक नहीं होने पर तनाव की अवधि के दौरान एक पोषक स्रोत प्रदान करना।
- उच्च संभावित नुकसान की स्थितियों में पोषक तत्वों के नुकसान को नियंत्रित करना।
- पौधों को एक ही समय में अन्य पौष्टिक रसायनों को लागू करने के लिए पोषण को बढ़ावा देना, जिससे आवेदन व्यय कम से कम हो सके।

**पर्णीय आवेदनः**

- यह उर्वरकों के बढ़ते पौधों के पर्ण पर एक या एक से अधिक पोषक तत्वों के घोल के छिड़काव को संदर्भित करता है।
- कई पोषक तत्वों को पत्तियों द्वारा आसानी से अवशोषित कर लिया जाता है, जब वे पानी में घुल जाते हैं और उन पर छिड़काव किया जाता है।
- स्प्रे समाधान की एकाग्रता को नियंत्रित करना होगा, अन्यथा पत्तियों के झुलसने के कारण गंभीर क्षति हो सकती है।
- लौह, तांबा, बोरान, जस्ता और मैंगनीज जैसे मामूली पोषक तत्वों के आवेदन के लिए पर्ण आवेदन प्रभावी है। कभी–कभी उर्वरकों के साथ कीटनाशक भी लगाए जाते हैं।
- पौधों की पत्तियों पर खड़ी फसल पर तनु विलयन के रूप में पोषक तत्वों का उपयोग किया जाता है।
- चूंकि उपापचय के लिए पोषक तत्वों का प्रत्यक्ष अनुप्रयोग होता है, इसलिए पोषक तत्वों के उपयोग की क्षमता बढ़ जाती है और पौधों द्वारा त्वरित प्रतिक्रिया देखी जाती है।
- यह विधि अधिक सुविधाजनक, आर्थिक और त्वरित उत्तरदायी है।

**पर्णीय छिड़काव से हानियांः**

- असावधानी के कारण यदि घोल की सान्द्रता अधिक हो जाये तो पत्तियों के झुलसने का डर रहता है।
- पर्णीय छिड़काव करने के तुरन्त बाद यदि वर्षा हो जाए तो पत्तियों पर तत्व नहीं रूकते। अतः तत्व बेकार चला जाता है।
- पुष्पावस्था में भी पर्णीय छिड़काव हानिकारक हो सकता है।
- कुछ उर्वरकों की ठन्डे पानी में घुलनशीलता कम होती है, जिससे छिड़काव के लिए घोल सही प्रकार से मिक्स नहीं हो पाता हैं।

**पौधों के पोषक तत्वों के पर्णीय अनुप्रयोगों के लिए सिफारिशेंः**

| सूक्ष्म तत्वों का नाम | तत्वों के प्रदान करने का प्रतिशत | प्रतिशत रसायनों के घोल का प्रतिशत |
|---|---|---|
| जिंक | जिंक सल्फेट | 0.5 जिंक सल्फेट+ 0.25 चूने का घोल |
| | चिलेटेड़ जिंक | 300–400 ग्राम प्रति हैक्टेयर |
| आयरन | फैरस सल्फेट | 0.5 जिंक सल्फेट+0.25 चूने का घोल |
| | चिलेटेड जिंक | 300–400 ग्राम प्रति हैक्टेयर |
| तांबा | कॉपर सल्फेट | 0.1 कॉपर सल्फेट+0.25 चूने का घोल |
| बोरोन | बोरेक्स | 0.2 बोरेक्स |
| मैंगनीज | मैगनस सल्फेट | 0.2–0.4 मैगनस सल्फेट |

**सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव:**

क्षारीय भूमियों में सूक्ष्म तत्वों को बुवाई पूर्व भूमि में देने से तत्वों का स्थिरीकरण हो जाता है। अतः सूक्ष्म तत्वों को भूमि में देने के बजाये पौधों पर पर्णीय छिड़काव करना अधिक लाभदायक है। गेहूँ, जौ तथा मैथी आदि आदि फसलों में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई पड़ने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट तथा 0.25 प्रतिशत बुझे चूने के घोल को साथ मिलाकर पर्णीय छिड़काव करने पर लिंक की कमी दूर की जा सकती है। खड़ी फसल में तांबे की मात्रा को पूरा करने के लिए 0.1 प्रतिशत कॉपर सल्फेट के घोल को 0.25 प्रतिशत चूने के घोल को पत्तियों पर चिपकने के लिए टीपोल का उपयोग कर छिड़काव करें। फसलों में यदि बॉरोन की कमी है तो इसकी शीघ्र पूर्ति के लिए 0.2 प्रतिशत बोरेक्स के घोल को आवश्यकतानुसार पानी में घोल कर फसलों पर छिड़काव करने से लाभ मिलता है।

**थायोयूरिया का छिड़काव:**

रबी फसलों में जैसे गेहूँ, जौ, मेथी, चना एवं मसूर पर थायोयूरिया के 0.5–0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने पर सूखा सहलन करने के साथ–साथ पैदावार में भी बढ़ोत्तरी पायी गयी। शुश्क क्षेत्रों में गेहूँ, जौ, सरसों, मेथी पर दो बार छिड़काव फूल आने से पूर्व एवं दाना बनते समय 0.1 प्रतिशत प्रभावी पाया गया तथा चना एवं मसूर में 0.05 प्रतिशत का छिड़काव फूल आने से पूर्व एवं दाना बनते समय 0.1 प्रतिशत प्रभावी पाया गया है।

**यूरिया का छिड़काव:**

गेहूँ, जौ, सरसों, मेथी, चना, मसूर, मटर, अलसी एवं विभिन्न सब्जी फसलों पर यूरिया के 0.5–2.0 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना अचित है। इसके लिए 100 लीटर पानी में 1.5–2.0 किग्रा में यूरिया का घोल बनाकर छिड़काव करना लाभदायक है। साधारण यूरिया का छिड़काव जब पौधे 4–6 सप्ताह के हो जाये या पौधों मे पत्तियां अच्छी तरह आ जायें, यदि आवश्यक हो तो दूसरा छिड़काव 10–15 दिन के अन्तराल पर दोहरावें। ध्यान रहे कि छिड़काव करते समय यूरिया के घोल में ताँबायुक्त फफूँदनाशी दवाओं को न मिलायें। छिड़काव के समय यूरिया की मात्रा घोल बनाने की विधि, उपयोग का तरीका, छिड़काव यंत्र एवं उसमें उपयोग होने वाले नोजल आदि की जानकारी पूर्ण रूप से कर लेनी चाहिए। तेज हवा चलने तथा आकाश में बादल होने पर यूरिया का छिड़काव न करें क्योंकि तेज हवा से तत्वों का छिड़काव समान रूप से नहीं हो पाता है।

**छिड़काव हेतु ध्यान देने योग्य मुख्य बातें:**

- छिड़काव के समय खेत में नमी का होना अति आवश्यक है।
- फसल पर घोल का एक समान छिड़काव करें।
- उर्वरकों और दवाओं की निर्धारित संस्तुत मात्रा का ही पानी में घोल बनाएं।
- हवा बन्द होने पर या मौसम खुला होने पर ही करें।
- छिड़काव हेतु घोल को बीच–बीच में लकड़ी से हिलाते रहना चाहिए जिससे घोल की सान्द्रता एक समान बनी रहे।
- छिड़काव सामान्यतः सुबह 9 बजे के बाद और दोपहर में 3 से 4 पी.एम. के बीच किया जाना चाहिए लेकिन सुबह के समय छिड़काव करने से बचें क्योंकि रात के समय पत्तियां ओस और ठंढ से गीली हो जाती हैं। 4 पी.एम. के बाद छिड़काव से भी बचना चाहिए क्योंकि उस समय तक पत्तियों के स्टोमेटा बंद होने लगते हैं।
- पोषक तत्वों के अधिकतम अवशोषण के लिए अनुकूलतम एकाग्रता के लिए जाएं।
- घोल का पीएच मान हमेशा 7 बनाए रखना चाहिए।
- स्प्रे उपकरण पोषक तत्वों के अवशोषण को भी प्रभावित करते हैं। सूक्ष्म–सूक्ष्म बूंदों के रूप में लगाए जाने पर पोषक तत्वों का अधिक अवशोषण होगा, ताकि पत्तियों का पूरा गीलापन हो।
- पोषक तत्वों का अधिकतम अवशोषण तब होगा जब वे पौधों पर अधिक से अधिक संख्या में कार्यशील पत्तियों (फोटोसिंथेटिक रूप से सक्रिय पत्तियों) पर लगाए जाते हैं।
- छिड़काव के बाद हाथ पांव अच्छी तरह साबुन से साफ करें।

अच्छी उपज और गुणवत्ता वाली फसल उत्पादन के लिए ''पर्णीय छिड़काव'' लाभकारी हो सकता है। जहां घुलनशील उर्वरकों को पर्णीय छिड़काव फीडिंग सिस्टम के माध्यम से फसलों तक पहुंचाया जाता है और विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश और मुख्यतः सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों को पत्तियों के माध्यम से संतुलित मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं, जो कि पौधों के वृद्धि और विकास के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। अतः पर्णीय छिड़काव पौधों के पोषण को बढ़ाने और समृद्ध बनाने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

# एक आँसू....

**निशांत चौहान**
मुख्य प्रबंधक, इंडियन बैंक, मुख्य कार्यालय, कोलकाता

तनिक ठहरा तनिक बिखरा।
रुका गाल पर, फिर मैं निखरा।।
दर्द की अनुभूति को समेटे।
कभी मैं पिघला कभी मैं सिहरा।।

एक पल में दिल से आँखों तक आना।
प्रिय भाव, तुम मुझे ही सीने से लगाना।।
मैं न रोकूँगा, स्वछन्द तुम्हारी वो अभिव्यक्ति।
भर लेना मुझे आँखों में, या फिर जी भर के बहाना।।

खुशी का भी साथी, गम से भी याराना।
महफिल हो किसी की भी, मुमकिन है, मेरा याद आना।।
शामिल इस कद्र कर दूंगा खुद को तुम में।
कि मुश्किल होगा मुझ बिन तुम्हें, अपनत्व जताना।।

रोके ना मुझे कोई घड़ी या कोई पहर,।
कोई हो जश्न या कोई हो कहर।।
हर आँख का साथ निभा मैं जाऊँगा।
हो शाम किसी की तो क्या, मेरी तो वही सहर।।

धन भी ना अस्तित्व मेरा मिटा सका।
ना ही समय कोई बाँध मुझ पर बना सका।।
साँसों से ज्यादा जीवन मैं परिभाषित करता हूँ।
तभी तो मृत कोई, मुझे न खुद में समा सका।।

# कटहल कृषि उत्पादन तकनीक

**लवकेश कुमार सोनी**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

कटहल की खेती लगभग पूरे देश में की जाती है। इसके बाबजूद कटहल की खेती में असम का स्थान सर्बोतम है। इसके अतरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और दक्षिण भारत के राज्यों में भी इसकी बागवानी बड़े पैमाने पर की जाती है। कटहल के फल को कच्चे तथा पक्के, दोनों प्रकार से उपयोग करते हैं, लेकिन सब्जी में इसका स्थान ज्यादा है। कटहल के फल का उपयोग आचार के लिए भी किया जाता है। इसकी कुछ देख भाल किया जाए तो कटहल की पैदावार अधिक ली जा सकती है।

**मिट्टी एवं जलवायु:**

कटहल की खेती के लिए ज्यादा देख देखभाल की जरूरत नहीं होती है। इसकी खेती किसी भी मिट्टी में की जा सकती है। लेकिन दोमट मिट्टी कटहल की बागवानी के लिए उपयुक्त है। कटहल की नर्सरी लगाने से पहले यह ध्यान देने की जरूरत है कि खेत में पानी का जमाव न हो, क्योंकि कटहल ज्यादा पानी नहीं सह सकती है। जहां तक जलवायु की बात की जाय तो इसकी बागवानी शुष्क तथा शीतोष्ण दोनों जलवायु में सफलता पूर्वक की जाती है। इसके साथ पहाड़ो तथा पठारों पर बागवानी की जाती है।

**उन्नत किस्में:**

कटहल की उन्नत किस्में रसदार, खजवा, सिंगापुरी, गुलाबी, रुद्राक्षी हैं। सिंगापुरी किस्में वर्ष में सिर्फ एक बार फल देती हैं। इसके अलावा कुछ किस्में वर्ष भर फल देती हैं।

**पौधे किस तरह लगायें:**

कटहल की पौधों की रोपाई करते हैं। लेकिन पके हुये कटहल से बीज निकालकर पहले पौधा तैयार कर लें। इन पौधों को उस जगह पर लगाएं जहां पर आप को बागवानी करनी है। खेत को तैयार करने के लिए एक गहरी जुताई करने के बाद पाटा चलाकर भूमि को समतल कर लें। समतल भूमि पर 10 से 12 मीटर की दूरी पर 1 मीटर व्यास एवं 1 मीटर गहराई के गड्ढे तैयार करें, इन सभी गड्ढों में 20 से 25 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट, 250 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 500 म्युरियेट आफ पोटाश, 1 किलोग्राम नीम की खली तथा 10 ग्राम थाइमेट को मिटटी में अच्छी प्रकार मिलाकर भर देना चाहिए। कटहल के पौधों की रोपाई का उपयुक्त समय जुलाई से सितम्बर है।

**सिंचाई कब कब करें:**

शुरुआत में पौधों को पानी देते रहना होगा। शुरुआत के कुछ वर्ष तक गर्मी के मौसम में प्रति सप्ताह तथा सर्दी के मौसम में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। अगर पौधा बड़ा हो गया है तो गर्मी के दिनों में प्रत्येक 15 दिन में तथा सर्दी के मौसम में 1 महीने में सिंचाई करना चाहिए। नवम्बर दिसम्बर माह में कटहल के पौधों में फूल लगता है इसलिए इन दो माह में सिंचाई नहीं करें।

**निंदाई गुडाई:**

कटहल के पौधों को निंदाई गुडाई करके साफ रखना चाहिए। बड़े पेड़ों के बागों की वर्ष में दो बार जुताई करनी चाहिए। कटहल के बाग में बरसात आदि का पानी बिलकुल नहीं जमना चाहिए ।

**अंतरफल:**

जब पौधा छोटा–छोटा रहता है तो पौधों के बीच काफी जगह खाली रहता है। इसके बीच में अन्य फसल भी प्राप्त कर सकते हैं। दलहन फसलें, सब्जी वाली फसलें तथा फलों में पपीता, अनानास व फालसा भी लगाया जा सकता है

**कीट एवं रोग:**

कटहल के पेड़ में रोग तथा कीट का प्रकोप बहुत कम होता है, लेकिन इसमें लगने वाला प्रमुख रोग गलन है। यह रोग राइजोपस आर्टोकारपाई नामक कवक के कारण होता है। इसका प्रकोप फल की छोटी अवस्था में होता है। इसके कारण कटहल के फल सडकर गिरने लगते हैं। इस बीमारी की रोकथाम के लिए डाइथेन एम. – 45 के 2 ग्राम प्रति लीटर घोलकर 15 दिनों के अंतराल पर 2 – 3 छिड़काव करना चाहिए। कीटों में मिली बग एवं तना छेदक प्रमुख हैं।

**मिली बैग–** यह कीट फल–फूल एवं डंठलों का रस चूसते हैं, जिससे फल तथा फूल गिर जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए मई दृ जून में बगीचे की जुताई कर देनी चाहिए। इसके उपचार के लिए 3 मिली. इंडोसल्फान प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

**तना छेदक–** यह कीट पेड़ के तने में छेदकर सुरंग बना देते हैं। इससे अन्दर के जीवित भाग को खाते रहते हैं। अगर इस कीट का प्रकोप बढ़ जाता है तो पेड़ की डालियाँ एवं तना सुख जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए पौधों के तना एवं डाली पर जहाँ छेद नजर आयें उसे केरोसिन तेल में रुई भिंगोकर भर दें और छेद के मुंह को मिट्टी से भर दें।

**उपज:**

कटहल के पौधे में शुरुआत में फल कम लगता है तथा फल लगने के बाद गिर जाता है लेकिन 10 से 12 वर्ष बाद प्रति पेड़ 100–250 तक प्राप्त होते हैं।

# मशरूम उत्पादनः आय का उत्तम साधन

**आकांक्षा पाण्डेय, अंकिता पाण्डेय व लक्ष्मी**
कृषि विज्ञान केन्द्र, बनखेड़ी

भारत जैसे विकासशील देशों में कुपोषण की गम्भीर समस्याएं हैं। मशरूम का उपयोग कर कुपोषण आसानी से दूर किया जा सकता है। क्योंकि मशरूम एक शाकाहारी पौष्टिक आहार है, जिसमें उच्च प्रोटीन, अनिवार्य एमीनोएसिड व कार्बोहाइड्रेट, प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। जनसाधारण में यह एक गलत धारणा है कि मशरूम कुकुरमुत्ता है। कुकुरमुत्ता गंदगी प्रिय होता है जबकि मशरूम का उत्पादन स्वच्छ वातावरण में नियंत्रित ताप एवं नमी पर धान के पैरा या गेहूँ के भूसे पर रसायनों/गर्म पानी द्वारा सूक्ष्म जीव रहित कर उगाया जाता है। जिसके बीज (स्पान) प्रयोगशाला में तैयार किए जाते हैं।

विश्व स्तर पर मशरूम की लगभग 2000 प्रजातियाँ खाने योग्य हैं। जबकि भारत में 200 प्रजातियों को खाने योग्य माना गया है। विश्व स्तर पर 8 किस्मों का व्यवसायिक उत्पादन किया जाता रहा है, जबकि भारत में बटन आयस्टर तथा पैडीस्ट्रा मशरूम का वृहद पैमाने पर उत्पादन किया जाता है। प्रकृति अपने आप में अनेक चमत्कारों से समृद्ध है। ऐसा ही एक चमत्कार पौष्टिक तथा आकर्षक आकार प्रकार एवं रंगो की विविधतायें लिये खाद्य पदार्थ खुम्बी की उपज है। जो जैविक छतरीनुमा या टोपीदार संरचना धारी पदार्थ के रुप में होती है। खुम्बी या मशरूम के बारे में कुछ लोगों की गलत धारणायें इसके खाने के बारे में भ्रमित करती हैं। परन्तु लगभग 20 प्रजातियों के विश्व भर में व्यापारिक या प्रयोगशालाओं में कृत्रिम संवर्धन हेतु प्रयास किये जा चुके हैं। मशरूम में नमी की मात्रा अधिक पाई जाती है, जो लगभग 90 प्रतिशात तक होती है। प्रति 100 ग्राम ताजा मशरूम 35 कैलोरी प्रदान करता है। अतः यह न्यूनतम कैलोरी आहार है। जिसमें कार्बोहाइड्रेट 4.5 से 5 प्रतिशत तक होते हैं। अच्छे किस्म की प्रोटीन लाइसिन और ट्रिप्टोफेन मशरूम में पायी जाती है। इसकी अनाजों में कमी होती है। खुम्बी में वसा की मात्रा केवल 0.3 प्रतिशत होती है। मशरूम मे कोलेस्ट्राल नही के बराबर होता है। खुम्बी में रेशा अधिक मात्रा में होता है। मशरूम विटामिन 'सी' और विटामिन 'बी' काम्पलेक्स विशेष रुप से थायमिन, राइबोफ्लोविन का अच्छा स्त्रोत है। फोलिक ऐसिड और विटामिन 'बी' 12 जो भारतीय आहार में प्रोटीन कम मात्रा में होता है। विश्व भर में मशरूम प्रोटीन को वनस्पति से उत्तम और पशु प्रोटीन जैसा उत्तम माना गया है, इसलिये मशरूम को प्रोटीन का गैर परंपरागत स्त्रोत माना गया है। जो भारतीय आहार में प्रोटीन की कमी को पूरा कर सकता हैं। कोलेस्ट्राल रहित होने से मोटापा, मधुमेह, ह्रदय रोगों की आहार चिकित्सा में उपयोगी है।

सामान्य तौर पर उगते हुए इस कवक को खाने के उपयोग में लाने हेतु इसकी खाद्य मशरूम के रूप में पुष्टि होना आवश्यक है तथा साथ ही रोगाणु मुक्त वातावरण में भी उगाया जाना आवश्यक है। सामान्यतः मशरूम से नाश्ते, सब्जी, अचार के रूप में परोसे जाने वाले व्यंजन बनाये जाते है जिनसे आवश्यक पौषक पदार्थ की पूर्ति होती है। साथ ही कुछ मशरूम में औषधीय गुण भी पाये जाते हंै। इस प्रकार मशरूम का सेवन जीवन के लिये नये आयामों की पुष्टि करता है।

## मशरुम उत्पादन विधिः

**मशरुम उत्पादन हेतु आवश्यक सामग्री–**

- गेंहू का भूसा, धान, कोदो का पैरा।
- पानी
- टंकी या नांद–भूसा भिगोने हेतु।
- जीवाणुनाशक दवा – फार्मेलीन
- फफूंदनाशक दवा – बावेस्टिन (कार्बेन्डाजिम)
- मशरुम का बीज (स्पान)
- पालीथीन बैग 12X18 इंच माप (100 गेज के) एवं रबर बैंड
- बांस या लोहे के सीढ़ीनुमा रैक
- पानी छिड़कने का सयंत्र (छोटा हजारा)
- हवादार कमरा (जिसमें सूर्य की रोशनी न आती हो)

## आयस्टर मशरुम (Pleurotus spp.) उत्पादन की विधिः

प्लूरोटस/ Abalone या ढ़िगरी जिसकी उगाई जाने वाली प्रमुख जातियां P. Sajorcaju, P. Florida, P. Cystidiosus, P. Flabellatus. P. Ostreatus, P. Sapidus, P. Enringii तथा P. Coulmbensis हैं। जो धान के पुआल, गेहूँ अथवा सोयाबीन के भुसे पर सुगमता से उगाई जा सकती है। पन्तनगर, मुंबई (Balasubramanya, 1981) एवं इंदौर में हुए अनुसंधान परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि मुंगफली के छिलके के एवं कपास की डंडिया (Stalks) इस मशरूम की अधिक पैदावार देते हैं। अनेक प्रकार के औद्योगिक, कृषि एवं कृषि वानिकी अवशेषों पर जिनमें लिगनिन एवं सेल्यूलोज की प्रचुरता हो इस मशरूम को सुगमता से उगाया जा सकता हैं। आदिवासी क्षेत्रों में इसे कोदों के भूसे पर भी आसानी से उगाया जा सकता है। इसे 20 से 30 से. के तापमान पर उगाया जा सकता है। परन्तु 20–25 डिग्री से. तापमान पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है। इसकी प्रचलित प्रजातियां P. florida III, P. ostreatus III, IV सफेद हैं।

## स्त्रोत (Substrate) का उपचारः

कृषि, कृषि वानिकी एवं कृषि आधारित औधोगिक अनुपयोगी अवशेषों को हानिकारक कवकों, जीवाणुओं एवं कीटों से मुक्त करने हेतु इन स्त्रोतों का उपचार किया जाता है।

**1. गर्म पानी द्वारा–** सामान्य पानी में 10–12 घंटे भिगोये अवशेषों को निथारकर कपड़े की थैली में भरकर 25–30 मिनट के लिए उबलते पानी में रखा जाता हैं। इसे पानी से बाहर निकालकर अंवाछित पानी को सुखाकर हल्के नम भूसे को बुआई हेतु (Spawning) प्रयोग किया

जाता है।

**2. फार्मेलिन तथा कवकना ी द्वारा–** उत्पादन हेतु प्रयुक्त होने वाले कार्बनिक स्त्रोतों को 12–14 घंटे हेतु 1–2% फार्मेलिन +0.05% बावस्टिन के घोल में भिगोया जाता है। पानी से बाहर निकाल कर इसे मशरूम की बुआई के लिए तैयार किया जाता है। ध्यान रहें कि भूसा फार्मेलिन की मात्रा से पूर्णतया मुक्त हो।

**3. भाप द्वारा उपचारित करना–** कृषि आधारित उद्योगों के अनुपयोगी अवशेषों को जैसे चाय की पत्तियों के अवशेष को भाप द्वारा उपचारित कर भी मशरूम उत्पादन में प्रयोग किया जाता है।

**4. रसायन द्वारा–** पोटैशियम परमैंगनेट तथा ब्लीचिंग पाउडर से भी उपचार कर कार्बनिक स्त्रोत को अंवाछित कवकों एवं जीवाणुओं से मुक्त किया जा सकता है।

## मशरूम की बुआई (Spawning):

हल्के नम भूसे या स्त्रोतों को 14–18 इंच की पालीथीन की थैलियों में 2% की दर से मशरूम के Spawn से बुआई की जाती है।

**1. मिश्रित बुआई (Mixed spawning)–** पालीथीन की थैलियों में भरने से पूर्व भूसे में स्पान को मिला दिया जाता है। तत्पश्चात् हल्का दबाकर भरने के पश्चात् थैलियों का मुंह बंद करके 10 – 12 बारीक छेद कर देते हैं।

**2. परत विधि से बुआई (Layer Spawning)–** इस विधि में 4 परतों में भूसे की सतह पर बीज की बुआई की जाती है। एकान्तर रूप से भूसा व बीज की परत बना दी जाती है।

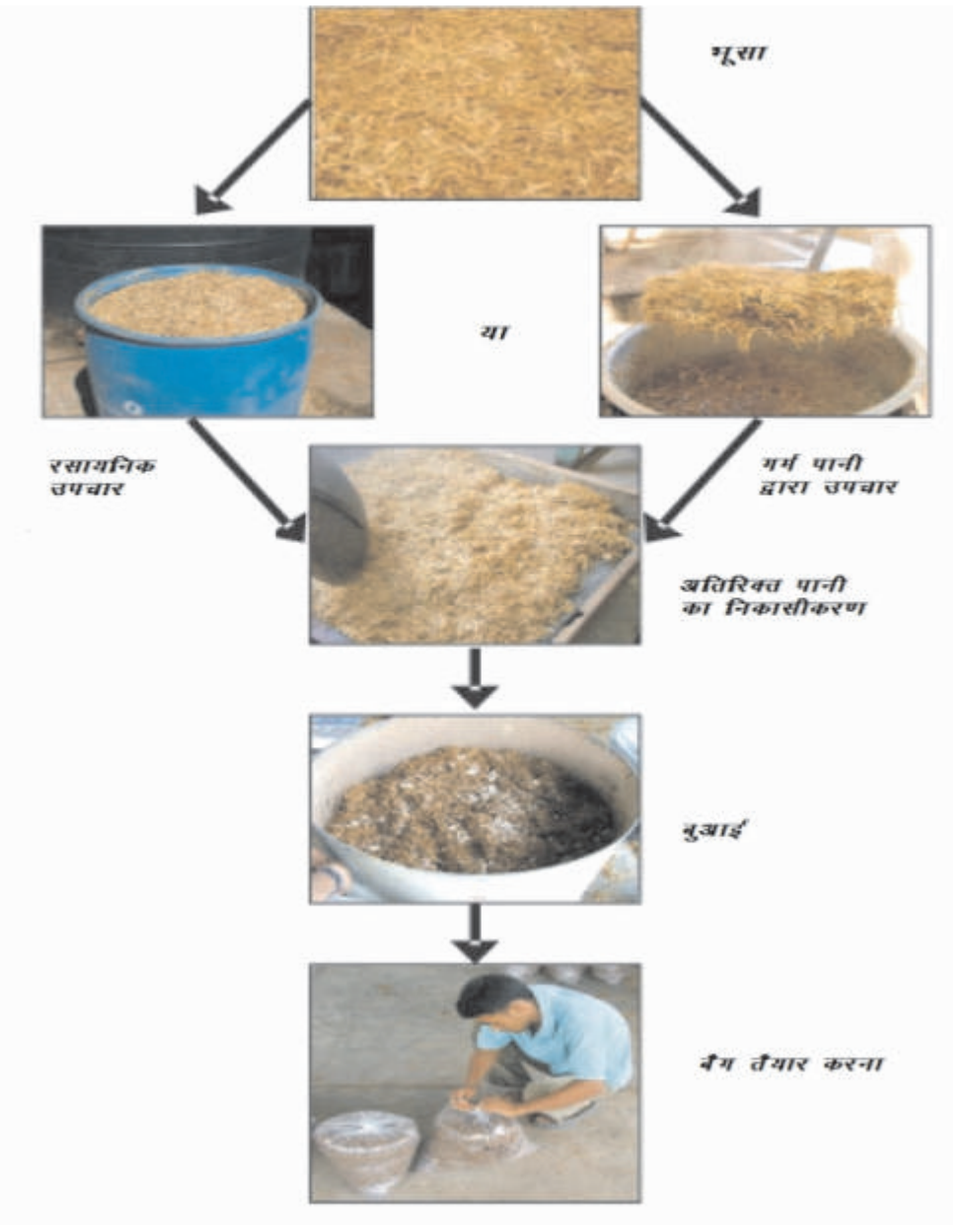


**3. परिधि पर बुआई (Spawning on periphery)–** इस विधि में केवल भूसे की परत के बाहरी वृत्ताकार भाग पर बीज की बुआई की जाती है। बुआई के पश्चात पोलीथिन की थैलियों को धागे से बांधकर थैलियों में 6–8 बारीक छेद कर देते हैं।

## कवकजाल की वृद्धि एवं विकास (Spawn run):

बीज में समाहित कवकजाल की कार्बनिक स्त्रोतों में पूर्णतः कवक वृद्धि एवं प्रसार हेतु इसे 2–3 सप्ताह के निम्नलिखित वातावरण में रखा जाता हैं।

| | |
|---|---|
| तापमानः | 20–30 डिग्री से. |
| आपेक्षिक आर्द्रताः | 75 – 80% |
| प्रकाशः | नहीं |
| वायुप्रवाहः | कम से कम |

जब सम्पूर्ण स्त्रोत सफेद कवकजाल से आच्छादित दिखाई दे इन थैलियों को तेज धार वाले चाकू या ब्लेड़ से दो किनारों से काटकर भूसे व कवक की बेलनाकार संरचना की परिधि को खोल दिया जाता है।

**उत्पादन हेतु कक्ष में रखना (Incubation)–** इन पौलीथीन आधारित बेलनों को मशरूम उत्पादन हेतु लटकाकर या लोहे या लकडी की रैक पर निम्नलिखित वातावरण परिस्थितियों में 3–4 सप्ताह के लिए रखा जाता है।

| | |
|---|---|
| तापमानः | 20–30 डिग्री से. |
| आपेक्षिक आर्द्रताः | 80– 85% |
| प्रकाशः | 2–4 घंटे प्रतिदिन (कृत्रिम रूप से कक्ष में ) |
| वायुप्रवाहः | 2–4 घंटे प्रतिदिन |

तीन से चार दिन पश्चात छोटे घुण्डी नुमा फलनकाय निकलने लगते है। जो 4 – 6 दिन में उपयुक्त आकार ग्रहण कर लेते हैं तथा भूसे के उपरी भाग तथा वेलनाकार परिधि व सतह से बहुतायत से निकलते हैं। पूर्ण विकसित परन्तु रेशे रहित अवस्था में इसकी 3–4 तुडाई की जा सकती है। उत्पादन कक्ष की स्वच्छता, दोबारा साफ पानी का छिड़काव व उचित रखरखाव से 100% जैविक दक्षता प्राप्त की जा सकती है।

**मशरुम की तुड़ाई , ताजा उपयोग एवं सुखाना:**

मशरूम के फलनकाय की सामायिक तुड़ाई से अच्छी गुणवत्ता का उत्पादन प्राप्त होता है। आकर्षक हल्के, मटमैले सफेद, भूरा रंग लिए हुए फलनकाय जो पूर्ण परिपक्व हों तथा जिनकी निचली सतह पर धारियों की गहराई न के बराबर हो तुड़ाई हेतु उपयुक्त होते हैं। इसके पश्चात इसमें रेशे विकसित हो जाते हैं तथा बीजाणु बनने के कारण कक्ष का वातावरण श्वास नली की एलर्जी भी उत्पन्न कर सकता है। ताजे मशरूम की छँटाई व सफाई के पश्चात इसे खाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। उत्पादन त्वरित उपयोग में न आने की स्थिति में इसे सुखाया जा सकता है, जिसके लिए 55–60 डिग्री से. तापमान पर धीरे – धीरे यांत्रिक ओवन. ड्रायर में रखकर सुखा लेते हैं।

**फसल की अवधि:**

1 दिन – निर्जिवीकरण

15 दिन – फफूंद का भूसे में फैलाव

3–5 दिन – पन्नी निकालकर टांगना

45 दिन – तक मशरुम 2–3 बार तोड़ना जिससे उत्पादन लिया जा सकता हैं।

60 गुणा 20 फीट के झोपड़ी से कम से कम 80.85 हजार रुपये की खुम्बी प्राप्त होती है।

**व्यर्थ थैलों का उपयोग:**

व्यर्थ थैलों का उपयोग कम्पोस्ट खाद बनाने में किया जा सकता है, जो फसलों, सब्जियों, फूलों की खाद के लिए किया जा सकता है। जिससे मृदा की उर्वरता बढ़ती हैं।

**सावधानियां:**

- मशरुम घर की सफाई एवं कीट व रोगों से बचाव करना चाहिए।
- फार्मेलीन तथा मैलाथियान दवा क्रमशः 50 मिली व 0.5 मिली दवा एक लीटर पानी में मिलाकर उत्पादन कक्ष के चारों तरफ छिड़काव करें।
- स्पानिंग कक्ष में स्पानिंग के पूर्व फार्मेलिन 50 मि.ली. व 1 मि. ली. नुवान/ली. पानी में घोल पर छिड़काव करें।
- मशरुम घर में 80 प्रतिशत नमी बनाये रखें।
- कीटों से बचाव हेतु प्रति सप्ताह 0.1 प्रति. नुवान का फर्श व दीवारों पर छिड़काव करें।
- मशरुम तोड़ने के बाद ही भूसे के पिण्डो पर पानी का छिड़काव करें।
- बीज (स्पान) विश्वसनीय संस्था से खरीदें।
- चूहा व गिलहरी से रक्षा करें।
- कीटनाशकों का उपयोग खुम्बी निकरने की अवसथा में न करें।

**विपणन:**

- ताजी खुम्बी (2–3 दिन तक)
- सूखी खुम्बी (1 कि.ग्रा. से सूखकर करीब 125 ग्राम खुम्बी होती है)।
- अचार बनाकर।
- सूप के लिए पाउडर रुप में।
- आस–पास के शहरों में बेंचने के लिए भेज कर।
- अच्छे मशरुम के स्पान की उपलब्धता।

**मशरूम का सेवन कैसे करें:**

ताजा मशरूम उपयोग करना अच्छा रहता है। इसका उपयोग करने से पहले गर्म पानी में अच्छी तरह धोकर प्रयोग करे तथा सूखे मशरूम का उपयोग गर्म पानी में एक घंटा भिगोकर ठंडे पानी से धोकर प्रयोग करना चाहिए। कृत्रिम रूप से उत्पादित खेती द्वारा तैयार मशरूम कभी भी जहरीला नहीं होता है।

**मशरूम कार्य से जुड़ी संस्थायें:**

1. पौध रोग विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली।
2. पौध रोग विभाग, जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)।
3. पौध रोग विभाग, इंदिरा गॉधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)।

# ग्रीष्मकालीन ऋतु में पशुपालकों के दुधारू पशुओं के साथ–साथ डेरी फार्म (गौशाला) के दुधारू पशुओं का सावधानीपूर्वक देख–भाल

**पंकज कुमार गुप्ता, प्रवीण उपाध्याय, नीरज वर्मा, आशुतोष गुप्ता एवं सात्विक सहाय बिसारिया**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना
कृषि शस्य विज्ञान डिवीजन, आई सी ए आर (ICAR) भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान (IARI), नई दिल्ली, 110012

**सारांशः**

भारत दुग्ध उत्त्पादन में पिछले दो दशक से विश्व में प्रथम उत्पादक (187.70 मि.टन, 2018–19 एवं दूध उप्लब्धता 394 ग्राम/प्रतिदिन/व्यक्ति, एन. डी.डी.बी. गुजरात, भारत) राष्ट्र है। विश्व में विभिन्न देशों की तुलना में भारत में सबसे ज्यादा दूध देने वाली पशुओं की संख्या है। लेकिन उत्पादकता के दृष्टिकोण से विदेशों की तुलना में बहुत ही कम है फिर भी हमारे देश में दूध की पूर्ती इन्हीं पशुओं से पूरी होती है। ग्रीष्मकालीन ऋतु में दुधारू पशुओं से यदि सतत दूध प्राप्त करना है तो आवास व्यवस्था तथा सबसे महत्वपूर्ण भोजन व्यवस्था व इसके अलावा साफ व स्वच्छ पानी उपलब्ध कराना, हरा चारा उपलब्ध कराना, लू लगने से बचाना इत्यादि अनिवार्य है। दुधारू पशुओं के लिए अगर पानी की उचित व्यवस्था सम्भव हो तो दिन में एक बार जरूर नहलायें। नही कम से कम 2–3 दिन में 1 बार अवश्य नहालयें। इसके अलावा पशुओं के शरीर पर खुरैरा (ग्रूमिंग) जरूर करें। अगर समय–समय पर इसका अनिवार्य रूप से पालन किया जाये तो ग्रीष्मकालीन ऋतु में दूध की मात्रा में कमी नहीं आएगी। यदि कुछ कमी आयी भी तो अत्यधिक गर्मी के कारण आएगी।

**परिचयः**

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के कथनानुसार, कि–गाय बचेगी तो मनुष्य बचेगा, गाय नष्ट होगी तो उसके साथ हमारी सभ्यता और अहिंसा प्रधान संस्कृति भी नष्ट हो जाएगी और पीछे रह जाएँगे भूखे–नंगे हड्डी के ढाँचे वाले मनुष्य। मनुष्य का सम्बन्ध गाय से इस प्रकार है कि गाय से दूध तथा उससे बने पदार्थ जैसे दही, घी, गोबर एवं मूत्र इत्त्यादि का आदिकाल से भारतीय परम्पराओं में विशेष रूप से अवसरों पर प्रयोग किया जाता रहा है और तो और आज बहुत सारे पशुपालकों के आय का एक मात्र जरिया है, जिससे उनका और उनके परिवार का जीवन यापन चलता है।

विश्व के विभिन्न देशों की तुलना में भारत में सबसे ज्यादा दूध देने वाली पशुओं कि संख्या है लेकिन, जब बात उत्पादकता की आती है तो भारत विश्व के शीर्ष दस देशों में भी शामिल नही होता, फिर भी हमारे देश में दूध की पूर्ती इन्हीं पशुओं से पूरी होती है। धीरे धीरे हमारे देश में उच्च गुणवत्ता वाले नस्ल के सांड के वीर्य (सीमेन) का प्रयोग करके दूध उत्पादन के साथ साथ अच्छी नस्ल के पशुओं को बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है। नेशनल ब्यूरो ऑफ एनिमल जेनेटिक रिसोर्सेज, करनाल, हरियाणा' के अनुसार भारत में स्वदेशी गायों की 42 प्रजातियाँ हैं, तथा भैंस की कुल 16 प्रजातियाँ हैं। 'मत्स्य पालन, पशुपालन और डेयरी मंत्रालय के पशुपालन एवं डेयरी विभाग

की 20वीं' पशुधन गणना रिपोर्ट' (20वीं लाइवस्टॉक सेन्सस रिपोर्ट) के अनुसार देश में कुल पशुधन आबादी 535.78 मिलियन है, जो 19वीं'पशुधन गणना–2012 (512.57 मिलियन) की तुलना में 4.6 प्रतिशत अधिक है। कुल गोजातीय पशुओं की संख्या (मवेशी, भैंस, मिथुन एवं याक) वर्ष 2019 मे 302.79 मिलियन आंकी गई जो पिछली गणना की तुलना में लगभग 1 प्रतिशत अधिक है। इसके अलावा, देश में मवेशी (गायों) की कुल संख्या वष 2019 में 192.49 मिलियन है, जो पिछली गणना की तुलना में 0.8 प्रतिशत ज्यादा है, जिसमें मादा मवेशी (गायों की कुल संख्या) 145.12 मिलियन आंकी गई है, जो पिछली (19वीं 'पशुधन गणना–2012) की तुलना में 18.0 प्रतिशत अधिक है जो कि, देश में दूध उत्पादन के लिए एक अच्छा संकेत है। विदेशी/संकर नस्ली और स्वदेशी/अवर्गीय मवेशी की कुल संख्या देश में क्रमशः 50.42 मिलियन और 142.11 मिलियन है। इसी क्रम में, अगर बात करें तो स्वदेशी/अवर्गीय मादा मवेशी की कुल संख्या वर्ष 2019 में, तो पिछली गणना की तुलना में 10 प्रतिशत बढ़ गई है। विदेशी/संकर नस्ल वाली मवेशी की कुल संख्या वर्ष 2019 में पिछली गणना की तुलना में 26.9 प्रतिशत बढ़ गई है। विदेशी/संकर नस्ल की संख्या में बढोत्तरी दूध के लिहाज से जरूर एक अच्छा संकेत है से लेकिन जो आजकल देश और दुनिया में ए1 और ए2 मिल्क का प्रचार प्रसार हो रहा है, जिसमे ये कहा जा रहा है कि ए1 मिल्क विदेशी/संकर नस्ल की गायों में पाया जाता है। इसीलिये इस लिहाज से इनकी संख्या में बढोत्तरी होना अच्छा नही है। स्वदेशी/अवर्गीय मवेशी की कुल संख्या पिछली गणना की तुलना में 6 प्रतिशत कम हो गई है। हालांकि, 2012–2017 के दौरान स्वदेशी/अवर्गीय मवेशी की कुल संख्या में कमी की गति 2007–2012 के लगभग 9 प्रतिशत की तुलना में अपेक्षाकृत काफी कम है। देश में भैंसों की कुल संख्या 109.85 मिलियन है जो पिछली गणना की तुलना में लगभग 1.0 प्रतिशत अधिक है। गायों और भैंसों में कुल दुधारू पशुओं की संख्या 125.34 मिलियन है, जो पिछली गणना की तुलना में 6.0 प्रतिशत अधिक है। गर्मी के साथ साथ

बढती हुई आर्द्रता में पशुओं की देख रेख की अधिक आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि इस समय दुधारू पशुओं की सुरक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इससे दुग्ध उत्पादन पर कोई असर न पड़े। ग्रीष्मकालीन ऋतु में जब में दिन का तापमान 42–48 डिग्री तथा आर्द्रता 60 प्रतिशत से अत्यधिक हो जाता है। तो पशुओं के पाचन प्रणाली में परिवर्तन के साथ ही निर्जलीकरण का भी असर दिखने लगता है। जिसके कारण दुग्ध उत्पादन प्रभावित होने लगता है, जो पशुपालकों के लिए एक चिंता का विषय बन जाता है। गर्मी में दुधारू पशुओं पर यदि पर्याप्त ध्यान न दिया जाये तो पशु के चारा खाने की मात्रा में 10 से लेकर 30 प्रतिशत एवं दूध उत्पादन क्षमता में 10–25 प्रतिशत तक की कमी पायी जाती है। दूध वसा प्रतिशत पर प्रभाव पड़ता है। प्रजनन क्षमता में कमी होने के साथ साथ प्रतिरक्षा प्रणाली में भी कमी आ सकती है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक से लेकर इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक के अन्तिम वर्ष में भी ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव न सिर्फ दुनिया की मानव जाति पर पड़ रहा है बल्कि पशु–पक्षी, जीव–जंतु, जंगल, तालाब एवं चारागाह इत्यादि पर पड़ रहा है।

## दुधारू पशुओं में शारीरिक तापमान बढने के प्रमुख कारण:

**1. हीट स्ट्रेस–**

हीट स्ट्रेस के कारण जब पशुओं के शरीर का तापमान 101. 5 डिग्री से लेकर 102.8 फारेनहाइट तक बढ़ जाता है, तब पशुओं के शरीर में इसके लक्षण दिखने लगते हैं। हीट स्ट्रेस के दौरान दुधारू पशु अपना सामान्य तापक्रम बनाए रखने के लिए खानपान में कमी, दुग्ध उत्पादन में 10 से 25 फीसदी की गिरावट, दूध में वसा के प्रतिशत में कमी, प्रजनन क्षमता में कमी, प्रतिरक्षा प्रणाली में कमी आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

**2. थर्मोन्यूट्रल–**

पशुओं के शरीर में ऊष्मा संचयन एवं ऊष्मा उत्त्सर्जन के मध्य एक संवेदनशील संतुलन होता है, जो ताप विनियमन तंत्र द्वारा नियंत्रित होता है, एवं वातावरण के तापमान और आर्द्रता के संयोजन से उत्प्रेरित होता है। सामान्यतः ग्रीष्मकालीन ऋतु में ही दिखाई पड़ता है। ऐसी स्तिथि में जब ऊष्मा संचयन की दर ऊष्मा उत्त्सर्जन दर से अधिक हो जाता है, तो ऊष्मा के संग्रहण के कारण पशु के शरीर के आतंरिक भाग का तापमान बढ़ना शुरू हो जाता है।

**प्रमुखतया दो वजह से पशुओं पर गर्मी का होता है प्रभाव–**

1. इनवायरमेंटल हीट
2. मेटाबोलिक हीट

सामान्यतः इनवायरमेंटल हीट की अपेक्षा मेटाबोलिक हीट द्वारा कम गर्मी उत्पन्न होती है, लेकिन जैसे–जैसे दुग्ध उत्पादन और पशु की खुराक बढ़ती है, उस स्थिति में मेटाबोलिज्म द्वारा जो हीट उत्पन्न होती है वह इनवायरमेंटल हीट की अपेक्षा अधिक होती है। इसी वजह से अधिक उत्पादन क्षमता वाले पशुओं में कम उत्पादन क्षमता वाले पशुओं की अपेक्षा गर्मी का प्रभाव ज्यादा दिखाई देता है। इनवायरमेंटल हीट का प्रमुख स्त्रोत सूर्य होता है। अतः धूप से पशुओं का बचाव करना चाहिए।

## गर्मी का पशुओं की शारीरिक क्रियाओं पर प्रभाव:

- अपने शरीर के तापमान को गर्मी में भी सामान्य रखने के लिए पशुओं की शारीरिक क्रियाओं में कुछ बदलाव देखने को मिलते हैं।
- गर्मी के मौसम में पशुओं की श्वसन गति बढ़ जाती है, पशु हांफने लगते हैं, उनके मुंह से लार गिरने लगती है।
- पशुओं के शरीर में बाइकार्बोनेट आयनों की कमी और रक्त के पी.एच. में वृद्धि हो जाती है।
- पशुओं के रुमेन में भोज्य पदार्थों के खिसकने की गति कम हो जाती है, जिससे पाच्य पदार्थों के आगे बढने की दर में कमी हो जाती है और रूमेन की फर्मेन्टेशन क्रिया में बदलाव आ जाता है।
- त्वचा की ऊपरी सतह का रक्त प्रभाव बढ़ जाता है, जिसके कारण आंतरिक ऊतकों का रक्त प्रभाव कम हो जाता है।
- शुष्क पदार्थ ग्रहण (ड्राय मेटर इंटेक) करने की क्षमता 50 प्रतिशत तक कम हो जाता है, जिसके कारण दुग्ध उत्पादन में कमी आ जाती है।
- पशुओं में पानी की आवश्यकता बढ़ जाती है।

## गर्मियों में इन बातों का रखे विशेष ध्यान:

1. दुधारू पशुओं को दिन के समय सीधी धूप से बचाएं। दूध दुहने के बाद उन्हें बाड़े (पर्याप्त मात्रा में पेंड़–पौधे हो) में घूमने–टहलने के लिए छोड़ देना चाहिए। दिन में बाहर चराने के लिए न ले जाएं।
2. हमेशा पशुओं को बांधने के लिए छायादार और हवादार स्थान का ही चयन करें।
3. दुधारू पशुओं को समय समय पर साफ, स्वच्छ एवं मीठा पानी पिलायें क्योंकि गर्मी के दिनों में पशुओं में पानी पीने मात्रा बढ़ जाती है।
4. पशुओं को हरा रसीला मीठा चारा खिलाएं जिससे पशुओं के मेटाबोलिज्म प्रकिया अच्छा रहे और भोजन आसानी से पच जाये इसके अलावा एक महत्वपूर्ण बात हरे चारे में नमी की मात्रा कम से कम 70–80 प्रतिशत होना चाहिए।
5. यदि दुधारू पशुओं में असामान्य लक्षण (खाने में रूचि न दिखाना, देखने में सुस्त लगना, अच्छे ढंग से पागुर न करना और शरीर के तापक्रम में अचानक बदलाव) नजर आते हैं तो नजदीकी पशुचिकित्सक से तुरंत संपर्क करें।
6. यदि संभव हो तो डेयरी शेड में दिन के समय कूलर, पंखे आदि का इस्तेमाल करें।
7. दुधारू पशुओं को संतुलित आहार (आइडियल राशन) देने के साथ–साथ यदि गाय है, तो 3 लीटर दूध पर 1 किलोग्राम दाना, अगर भैंस है तो 2–5 लीटर दूध पर 1 किलोग्राम दाना देना चाहिए। जिससे पशुओं के दूध उत्त्पादन में गिरावट न आने पाए।
8. अधिक गर्मी की स्थिति में पशुओं के शरीर पर पानी का छिड़काव करें।
9. दुधारू पशुओं के लिए अगर पानी की उचित व्यवस्था

सम्भव हो तो दिन में एक बार जरूर नहलायें। नहीं तो कम से कम 2–3 दिन में 1 बार अवश्य नहालयें। इसके अलावा पशुओं के शरीर पर खुरैरा (ग्रूमिंग) जरूर करें।

**ग्रीष्मकालीन ऋतु में दुधारू पशुओं को बचाने के उपायः**

पशुओं को गर्मी से बचाने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए–

**1. आवास प्रबंधन–**

- प्रत्येक गाय एवं भैंस के लिए कम से कम 5–5 फीट चौड़ी एवं 10फीट लम्बी पक्की खुरदुरी जगह होनी (पूंछ से पूंछ आवास विधि) चाहिए।
- फर्श खुरदुरा (अत्यधिक खुरदुरा न हो) होने के साथ साथ मूत्र निकासी के लिए नाली की सुविधा अच्छी होनी चाहिए।

- दुधारू पशुओं के लिए आवास की छत कम से कम 15 फीट ऊँची होनी चाहिए। जिसमें ईंट, फूस, पुआल, सूखे हुए गन्ने की सूखी पत्तियों से आवास का छत बनाया जा सकता है। ये पत्तियां छत के अंदर इंसुलेटर का काम करती हैं और तापक्रम को सामान्य बनाये रखती है।
- दुधारू पशुओं के अलावा और भी पशुओं के लिए 2–3 तरफ से खुला होना चाहिए। ऐसे आवास में केवल पश्चिम दिशा में दीवार रहे।
- पशु घर की छत की ऊंचाई पर 3–1.5 फीट के खुले रोशनदान होने चाहिए, ताकि पशुओं के निश्चित स्थान पर ताजी ताजी हवा आ सके। दिन के समय में खिड़की या घर के खुले भाग में जूट की बोरी से ढककर उसे अच्छी तरह से पानी से भिगो देना चाहिए और समय समय पर भिगोते रहना चाहिए, जिससे दुधारू पशुओं को शरीर के तापमान को सामान्य बनाये रखने में सहायता मिले।
- दुधारू पशुओं को ग्रीष्मकालीन ऋतु में या तो आवास के अंदर या फिर बाड़े में पेड़ कि छांव में आराम करने देना चाहिए।
- दुधारू पशुओं (अधिक दूध देने वाली गाय/भैंस) के लिए ग्रीष्मकालीन ऋतु में पंखा के साथ साथ कूलर की भी आवश्यकता पड़ती है जिससे उनको गर्मी से निजात मिल सके।

**2. पानी का प्रबंधन (निर्जलीकरण से बचाना)–**

- पशु शरीर में लगभग 59 प्रतिशत पानी होता है।
- ग्रीष्मकालीन ऋतु में दुधारू पशुओं के लिए ठण्डा व साफ सुथरा पीने का पानी हर समय पशुओं को उपलब्ध होना चाहिए। आमतौर पर एक स्वस्थ व व्यस्क पशु को दिन में लगभग 75–80 लीटर तक पानी कि आवश्यकता पड़ती है और दुधारू पशु दिन भर में बड़ी आसानी से पी लेता है। आपको जानकार ये हैरानी होगी कि, दूध सामान्यतः 83–89% तक जल होता है। अतः एक लीटर दूध के लिए 2–2.5 लीटर अतिरिक्त पानी की आवश्यकता होती है। गर्मियों में पशु शरीर के तापमान को नियंत्रित करने में पानी भी काम आता है।
- दुधारू पशुओं को दिया जाने वाला पानी तथा उसमें पाये जाने वाले पोषक तत्त्वों को शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुंचने के बाद फिर यही पानी पशु के शरीर में पाए जाने वाले विषाक्त पदार्थ को मूत्र के रूप बहार निकाल देता है।
- दुधारू पशुओं के दूध दोहने के 2 घंटे पहले पशु के शरीर और धन को अच्छी तरह से धोएं तथा सावधानी पूर्वक सुखाएँ।
- पशुओं को प्रतिदिन साफ पानी से स्वच्छतापूर्वक धोना चाहिए या दिन में कम से कम 1–2 बार नहलाना चाहिए, जिससे पशुओं के शरीर का तापमान कुछ हद तक कम हो सके और पशु राहत महशूस कर सकें।
- अधिक दूध उत्पादन करने वाले पशुओं के लिए पशुशाला के अंदर ही नहलाने के लिए स्प्रिंकलर भी लगा सकते हैं।

स्प्रिंकलर द्वारा पशुओं के शरीर पर 3–15 मिनट तक लगातार छिड़काव करना चाहिए। यह गर्मी से बचने के लिए सबसे कारगर, उत्तम एवं आसन तरीका है।

**3. पर्यावरण प्रबंधन–**

सामान्य चयापचय को बनाए रखने के लिए दुधारू पशुओं का मुख्य शरीर का तापमान स्थिर होना आवश्यक है। इस के साथ ही मुख्य शरीर का तापमान परिवेश के तापमान से थोड़ा अधिक होना चाहिए, ताकि गर्मी का स्थानांतरण बाहरी वातावरण में आसानी से हो सके। चारे के पाचन से और पोषक तत्वों की चयापचय से गाय के शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है। अगर डेयरी गायों को छाया, हवादार घर, आसपास ठंडी हवा या फिर फव्वारा सिंचाई उपलब्ध कराई जाए तो गर्मी के हानिकारक प्रभाव को कम किया जा सकता है, जिससे उनके दूध उत्पादन, प्रजनन एवं उनकी रक्षा प्रणाली पर कम से कम असर पड़े।

**4. लू से बचाना–**

भारत के लोग इस बात से जरूर वाकिफ होंगे कि हमारे पूरे देश में जून तक मानसून का आगमन हो जाता है। मई के अंत तक गर्म लू चलने से पशुपालकों को मुश्किलें आ सकती हैं। गर्मी के मौसम में हवा के गर्म थपेड़ों और बढ़े हुए तापमान से पशुओं में लू लगने का खतरा और भी ज्यादा बढ़ जाता है। कई बार पशुपालक पशु के चरने के आने के बाद उन पर पानी छिड़क देते हैं। जिससे पशुओं को बुखार आ जाता है।

गर्मियों में भैंसों को तो दोपहर में नहलाया जा सकता है, क्योंकि उनकी खाल काफी मोटी होती है। इससे उन पर खासा कोई फर्क नहीं पड़ता है लेकिन, गाय और बकरी के लिए यह नुकसानदायक बन जाता है। इससे सबसे बड़ा नुकसान पशुपालक को होता है क्योंकि दूध उत्पादन घट जाता है।

## दुधारू पशुओं की भोजन व्यवस्थाः

भोजन के बिना किसी भी जीवधारी का जीवित रहना संभव नहीं है। मनुष्य हो चाहे पशु, सभी को भोजन करने की आवश्यकता होती है। मनुष्य शरीर की भांति पशु शरीर भी जीवित अवस्था में सदा कुछ न कुछ काम किया करता है। सोते–जागते कभी भी शरीर के तंत्रों को एकदम शांति नही मिलती, उदाहणार्थ हृदय जो प्रत्येक क्षण पशु शरीर के अंदर रुधिर को रुधिर वाहिकाओं में फेंकता रहता है, श्वसन तंत्र (रेस्पिरेटरी सिस्टम) स्वसन क्रिया में संलग्न रहता है, पाचन तंत्र भोजन की पाचन क्रिया में लगा रहता है, दुग्ध स्रावक तंत्र दुग्ध उत्पदन क्रिया में लगा रहता है, तथा इसके अलावा उत्सर्जन तंत्र और तंत्रिका तंत्र भी इसी प्रकार क्रमशः मल–विसर्जन तथा मस्तिष्क के आदेश में लगे रहते है। संक्षेप में, पशु को जीवित रहने, वृद्धि करने, कार्य करने एवं उत्पादन करने के लिए चारे दाने की आवश्यकता होती है। अतः दुधारू पशुओं का आहार ऐसे पोषक तत्त्वों से बना होना चाहिए जिससे कि वे पर्याप्त मात्रा में पशुओं को उपलब्ध हो जाये।

**1. दुधारू पशुओं की आहार व्यवस्था–**

- एक वयस्क पशु को 4–6 किलोग्राम (दुधारू पशुओं को दूध उत्पादन की मात्रा के अनुसार) सूखा तथा 15–20 किलोग्राम हरा चारा खिलाया जाना चाहिये। फलीयुक्त एवं गैर फलीयुक्त हरे चारे को 1:3 के अनुपात में खिलाया जाना चाहिए।
- दुधारू पशुओं को केवल सूखा चारा दिए जाने वाले पशु को पूरक आहार के रूप में यूरिया मोलासिस खनिज ब्लॉक दिया जान चाहिए।
- पशुओं को अच्छी गुणवत्ता वाला खनिज मिश्रण उपलब्ध कराया जाना चाहिए। दुधारू पशुओं के हरे चारे में अचानक दूसरे चारे का बदलाव नहीं करना चाहिए और अगर बदलाव भी करना है तो धीरे धीरे करें।

**2. चारा दाना का प्रबंधन–**

- दुधारू पाशुओं को दाना खिलने से पुर्व उसे पानी में भिगो लेना चाहिए। पानी में भिगो लेने पर दाने आपस में भली–भांति मिल जाते हैं और पशु उन्हें चाव से खाते है तथा ये आसानी से पच जाता है।
- दाने को पशुओं को दल कर खिलाना चाहिए। दल जाने पर एक तो ये नमी को शीघ्र ही सोख लेते हैं और अगर दाने खड़े खड़े रह जायें तो दुधारु पशुओं को ही नही वरन् दूध न देने वाले पशुओं को भी पचाने में परेशानी होगी।
- दुधारू पशुओं को खलियाँ (खली में अपेक्षाकृत वसा की ज्यादा मात्रा) में फैट ज्यादा मात्रा में होने के कारण दूध का उत्पादन अचानक बढ़ जाता है। दुधारू गायों को ब्यांत के तुरंत बाद 3–4 दिन तक खलियाँ नहीं देनी चाहिए।
- दुधारू पशुओं को यदि हरा चारा खिलाना है तो उसे कुट्टी

से काटकर खिलानी चाहिए। साबुत चारा पशुओं के सामने डाल देने से वे पत्तियों को तो खा जाते हैं और तनों को छोड़ देते हैं। चारे को कुट्टी से काटकर खिला देने से सारा चारा काम में आ जाता है। हरे चारे का विशेष महत्व है, क्योंकि यह स्वादिष्ट होने के साथ–साथ पौष्टिक भी होता है तथा दूध उत्पादन में वृद्धि भी करता है।

- पुआल को क्षार (अल्कली) से उपचारित किये जाने पर अधिक उपयोगी हो जाता है। पुआल को क्षार से उपचारित करने के लिए उसे 1.25 प्रतिशत कास्टिक सोडा का घोल में सामान्य ताप पर 24 घंटो तक भिगोकर रखा जाता है। इसके बाद पुआल को साफ एवं स्वच्छ पानी में धो लिया जाता है इस प्रकार उपचारित पुआल पहले की अपेक्षा अधिक उपयोगी हो जाती है।
- दुधारू पशुओं के दुग्ध उत्पादन में खनिज लवण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। पशु शरीर में कैल्शियम, पोटाश, मैग्निशियम, फास्फरोस एवं लोहा के लवण मुख्य रूप से पाए जाते हैं। ये शरीर के नये उत्तकों को बनाने, उत्तकों की क्रियाओं को पूर्ण करने या स्वास्थ्य रक्षा के लिए परम आवश्यक है। हड्डियों के लिए कैल्शियम तथा फास्फरोस की आवश्यकता होती है तथा रुधिर के लिए लोहा इसके अलावा अंतः स्त्रावी ग्रंथियों को बनाने में साधारण नमक कि आवश्यकता होती है।
- पशुओं के शरीर में प्रायः 2–5 प्रतिशत लवण पाए जाते हैं, जो भोजन पचाने में सहायक होते हैं, साथ ही साथ दुधारू पशुओं में ये दुग्ध में से निकले हुए खनिज लवण की पूर्ती करते हैं तथा ये रक्त को ऑक्सीजन के शोषण में सहायता भी प्रदान करते हैं।
- चारा और दाने का 70:30 अनुपात कुल पशु खाद्य में रहना चाहिये। अच्छी गुणवत्ता के दाने व चारे को पशुओं को खिलाना चाहिए क्योंकि गर्मियों में पशु कम खातें है।

दाने का मिश्रण बाजार से खरीद सकते है या घर में बना सकतें है–

उदाहरण के लिए

| क्रम संख्या | संघटक मात्रा | (प्रतिशत) |
|---|---|---|
| 1 | गेहूँ की चोकर | 20 |
| 2 | चूनी की चोकर | 20 |
| 3 | मक्का | 15 |
| 4 | खली | 25 |
| 5 | अरहर की चूनी | 10 |
| 6 | मूँग की चूनी | 5 |
| 7 | खनिज मिश्रण साधारण नमक, विटामिन्स , इत्यादि | 5 |
| | कुल | 100 |

**नोटः**

देश में पशुधन गणना वर्ष 1919–20 से ही समय–समय पर की जाती रही है। पशुधन गणना प्रत्येक पांच वर्ष पर (मत्स्यपालन, पशुपालन और डेयरी मंत्रालय के पशुपालन एवं डेयरी विभाग) द्वारा कराया जाता है। 20वां लाइवस्टॉक सेन्सस रिपोर्ट, 2019 ये रिपोर्ट 2019 में आयी है जबकि 20वीं पशुधन गणना संख्या का यथार्थ वर्ष 2017 ही माना जायेगा, जैसे इसके पहले 19वां लाइवस्टॉक सेन्सस, 2012 माना गया है।

# जायद मौसम में मूँग की उन्नत खेती कैसे करें

**अंकिता पाण्डेय, आकांक्षा पाण्डेय, लक्ष्मी व ए.के. दीक्षित**
कृषि विज्ञान केन्द, देवास

**प्रस्तावना :**

भारत विश्व में दलहनी फसलों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में प्रथम स्थान पर है। देश में दलहनी फसलें 2 करोड़ 38 लाख हेक्टयर भूमि में बोई जाती है, जिनकी उत्पादकता केवल 622 कि.ग्रा./हे. है, जो कि बहुत कम है। मध्यप्रदेश का स्थान दलहनी फसलों के क्षेत्र एवं उत्पादन में क्रमशः पहला व दूसरा है। मध्यप्रदेश में दलहनी फसलों 50.4 लाख हेक्टयर भूमि में बोई जाती है, जिससे 35.9 लाख टन उत्पादन प्राप्त होता है। दलहनी फसलों के पौधों की जडों पर उपस्थित ग्रंथियां वायुमंडल से सीधे नत्रजन ग्रहण कर पौधों को देती है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है। दलहनी फसलें खाद्यान्न फसलों की अपेक्षा अधिक सूखारोधी होती हैं। इसलिए सूखा ग्रस्त प्रदेशों में भी इससे अधिक उपज मिलती है। कम अवधि की दलहनी फसलें अंतरवर्तीय व बहुफसली पद्धति में उपयुक्त होती हैं। दलहन प्रोटीन का सशक्त स्त्रोत होने से हमारे भोजन में इनका समावेश होता है।

मूंग खरीफ की मुख्य तथा कम समय में पकने वाली फसल है। मध्यप्रदेश में इसका 2 लाख हेक्टयर भूमि में उत्पदादित किया जाता है, जिसकी उत्पादकता 341.08 किग्रा प्रति हेक्टयर है। जो कि काफी कम है। मध्यप्रदेश में इसे खरीफ, रबी व जायद में उगाया जाता है। यह फसल कम अवधि की होने के कारण उसकी फसल पद्धतियों में बगैर प्रतिस्पर्धा के अपना स्थान बनाये रखती है। यदि किसान उन्नत जातियों एवं उत्पादन की तकनीकी को अपना ले तो 3–5 क्विंटल प्रति हेक्टयर तक उत्पादन और बढ़ाया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में मूंग की उत्पादन तकनीकी की विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

**भूमि का चुनाब एवं तैयारी :**

मूंग की खेती सभी प्रकार की भूमि में सफलतापूर्वक की जाती है मध्यम दुमट, मटियार भूमि, समुचित जल निकास वाली, जिसका पी.एच. मान 8–7 हो इसके लिए उत्तम है। भूमि में प्रचुर मात्रा में स्फुर का होना लाभप्रद होता है।

दो या तीन बार हल या बखर चलाकर मिट्टी का पाटा लगाकर समतल करें। दीमक से ग्रसित भूमि को फसल की सुरक्षा हेतु क्लोरोपायरीफॉस 20 किग्रा. प्रति हेक्टयर के मान से अंतिम बखर के पूर्व भुरकावें और बखर से मिट्टी में मिलावें।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार :

जायद में मूंग का बीज की मात्रा 25–30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर लेना चाहिये। बीज को 30 सेमी. की दूरी पर बोना चाहिये। बीज को कतार से कतार 45 सेमी. एवं पौधे से पौधे को 10 सेमी. की दूरी पर बोना चाहिये। बीज की बुवाई सीडड्रिल से की जानी चाहिए। 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम + 2 ग्राम थॉयरम या 3 ग्राम थायरम फफूंदनाशक दवा से प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करने से बीज एवं भूमि जन्य बीमारियों को रोका जा सकता है। इसके बाद बीज को जवाहर राईजोबियम कल्चर से उपचारित करें। 5 ग्राम राईजोबियम कल्चर प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें और छाया में सुखाकर शीघ्र ही बुवाई करना चाहिए। इसके उपचार से राईजोबियम की गांठें ज्यादा बनती है, जिससे नत्रजन स्थरीकरण से बढ़ोत्तरी होती है तथा जमीन की उर्वरा शक्ति बनी रहती है।

**बोनी का समय एवं विधि :**

जायद में फरवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह से मार्च के दूसरे सप्ताह तक बुआई करना चाहिए। बुवाई दुफन या तिफन से कतारों के बीच 30 सेमी. व पोधे से पौधे के बीच 10 सेमी और 4–5 सेमी गहराई पर करें। जायद में कतार की दूरी 20–25 सेमी रखना

चाहिए ताकि खरीफ से ज्यादा पौध संख्या प्रति हेक्टर प्राप्त हो सके।

**खाद एवं उर्वरक :**

मूंग साधारणतः आधारभूत उर्वरता वाली भूमि में उगायी जाती है। इनको बोने से पूर्व 8–10 टन कम्पोस्ट या गोबर की खाद बुवाई से 15 दिन पूर्व खेत में डालकर अच्छी तरह स मिला लेना चाहिए। मूंग की पोशक तत्वों की पूर्ति के लिए 20 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फास्फोरस एवं 20 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से डालकर बुवाई की जानी चाहिए। उर्वरकों का उपयोग बुवाई के ठीक पहले बीज के 5–7 सेमी. नीचे डालकर करें।

**सिंचाई :**

ग्रीष्म में मूंग में 5–6 सिंचाई की आवश्यकता हेाती है। पहली सिंचाई 20–25 दिन में देना चाहिए। इसके बाद 12–15 दिन के अंतराल पर सिंचाई की जानी चाहिए। फूल आते समय मूंग में सिंचाई नहीं की जानी चाहिए। राज्य में इसकी खेती 12 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है। राज्य में मूंग के सकल क्षेत्रफल की औसत उपज काफी कम है। निम्न उन्नत तकनीक के प्रयोग द्वारा मूंग की पैदावार को 20 से 50 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है।

**जायद में मूंग की प्रमुख प्रजातियां :**

| क्र. | प्रजाति | औसत उपज (कि./हे.) | पकने की अवधि (दिन) |
|---|---|---|---|
| 1 | नरेन्द्र मूंग1 | 10–12 | 65–70 |
| 2 | एस एम एल 668 | 12–14 | 60–65 |
| 3 | पंत मूंग 5 | 15–18 | 60–70 |
| 4 | एस एम एल 658 | 10–12 | 60 |
| 5 | आई पी एम 2–3 | 10 | 60–70 |
| 6 | पी डी एम 139 | 11–12 | 60–65 |
| 7 | मेहा | 12–15 | 60–65 |
| 8 | पूसा विशाल | 15–20 | 70–75 |
| 9 | टी बी एम 37 | 12–14 | 60–65 |

**विभिन्न प्रदेशों के लिए मूंग की प्रमुख संस्तुत प्रजातियां :–**

| क्र. | राज्य | ऋतु | प्रजाति |
|---|---|---|---|
| 1 | आंध्रप्रदेश | खरीफ | मदीरा, पेसारा 347 |
| 2 | असम | खरीफ/बसंत | पंत, मूंग 4, आई.पी.एम 2–3, सम्राट, पूसा, विशाल, मेहा |
| 3 | बिहार, झारखंड | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | पंत, मूंग 4, सम्राट, एच.यू.एम.1, आई.पी. एम.2–3, पूसा, विशाल, मेहा, पंत मूंग 5, टी. एम.बी.37, एच. यू.एम. 16, आईपीएम 2–3 |
| 4 | दिल्ली | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | गंगा 8, आईपीएम 2–3, पूसा, विशाल, गंगा 8, पंत मूंग 5, एस.एम.एल 668 |
| 5 | गुजरात | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | पूसा 9581, मेहा, सम्राट, मेहा |
| 6 | हरियाणा | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | पूसा, विशाल, आई.पी. एम. 2–3, गंगा 3, पूसा, विशाल, पंत मूंग 5, एस.एम.एल.683, एम.एच 125 |
| 7 | हिमाचल प्रदेश /जम्मू और कश्मीर | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | पंत मूंग 6, षालीमार मूंग 1, पूसा 672, आई. पी.एम. 2–3, आई.पी. एम. 2–3 |
| 8 | कर्नाटक | खरीफ/ग्रीष्म | एच.यू.एम. 1, आई.पी. एम. 2–14 |
| 9 | मध्यप्रदेश | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | एच.यू.एम. 1, मेहा, एच. यू.एम. 1, मेहा, पूसा 9531, सम्राट |
| 10 | महाराष्ट्र | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | टी.एच.आर.एम1, एच.यू. एम.1, पूसा 9531 |
| 11 | उडीसा | खरीफ/रबी, ग्रीष्म | सम्राट, सी.ओ.जी.जी. 912, ओ.बी.जी.जी.52, सम्राट, टी.ए.आर.एम1, आई.पी.एम. 2–14 |

| क्र. | राज्य | ऋतु | प्रजाति |
|---|---|---|---|
| 12 | पंजाब | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | गंगा–8, एम.एल.818, आई.पी.एम.2–3, एस. एम.एल.66, पूसा, विशाल, पंत मूंग 5 |
| 13 | राजस्थान | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | आर.एम.जी.492, एस. एम.एल.668, आई.पी. एम.2, आर.एम.जी.268, एस.एम.एल 668ए सम्राट, मेहा |
| 14 | उत्तरप्रदेश / उत्तराखंड | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | पंत मूंग 4,5, पूसा, विशाल, सम्राट, मेहा, टी.एम.बी.37 |
| 15 | तमिलनाडु | खरीफ/ग्रीष्म | सी.ओ.जी.जी.912, आई. पी.एम. 02–14 |
| 16 | पश्चिम बंगाल | खरीफ/बसंत, ग्रीष्म | पंत मूंग 5, पूसा, विशाल, सम्राट, पंत मूंग 5, मेहा, टी.एम.बी. 37, एच.यू.एम.16 |

## पौधसंरक्षण

### कीट नियंत्रण :

**1. रोयेंदार इल्लीं–** रोयेंदार इल्ली की तीन जातियां मूंग की फसल को नुकसान पहुंचाती हैं। ये इल्लियां पौधों के हरे भागों को खाती हैं। लाल रोयेदार इल्ली फसल की पौध अवस्था से ही नुकसान पहुंचाने लगती हैं। कभी–कभी फसल की दोबारा बुवाई करनी पड़ती है।

**नियंत्रण–**

- कीट के अण्डे एवं इल्लियों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए।
- 2 प्रतिशत मिथाइल पैराथियान धूल का 25–30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर भुरकाव करके नियंत्रण किया जा सकता है।

**2. गर्डल बीटल–** यह मूंग फसल का मुख्य कीट है। यह कीट रात्रि के समय अधिक हानि पहुंचाता है। दिन के समय भूमि में छिप जाता है। प्रौढ़ बीटल पत्तियों में छोटे–छोटे गोल छेद बना देता है।

**नियंत्रण–** फोरेट 20 प्रतिशत दानेदार का 10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के दर से भुरकाव करके इस कीट का नियंत्रण किया जा सकता है।

**3. हॉपर–** कीट प्रौढ़ एवं निम्न अवस्था में पत्तियों का रस चूस कर पौधे को कमजोर बनाता है। रस चूसने से पत्तियां भूरी एवं सिरे से मुड़ जाती हैं।

**नियंत्रण–**

- इसके नियंत्रण के लिये फोरेट 10 प्रतिशत दानेदार का 10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें।
- इमिडाक्लोप्रिड का 0.05 से 0.075 प्रतिशत का पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।

**4. जेसिड्स–** इस कीट के प्रौढ़ एवं निम्फ पत्तियों का रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं। जिससे पौधा कमजोर हो जाता है।

**नियंत्रण–** इसके नियंत्रण के लिये 0.1 प्रतिशत मेटासिस्टाक्स का छिड़काव करें।

### बीमारियां एवं उनका नियंत्रण :

**पीला मोजेक वायरस–** इस बीमारी के लक्षण बुवाई के एक महिने बाद दिखाई देते हैं। प्रभावित पौधा पूरी तरह से पीला पड़ जाता है।

**नियंत्रण–** रोग निरोधित किस्में जैसे आशा, पंत मूंग–4, नरेन्द्र मूंग–1, पीडीएम–11, पीडीएम–54 आदि लगाना चाहिए)। मेटासिस्टाक्स (0.1 प्रतिशत) मेलाथियान (0.1 प्रतिशत) का घोल मिश्रित करके दो से तीन बार छिड़काव करना चाहिए।

**मोसेक मोटल–** बीमारी के शुरुआती लक्षणों में पत्तियां छोटी और मुड़ी हुई हो जाती हैं।

**नियंत्रण–** इसके लिये बीमारी से ग्रसित पौधों को उखाड़ कर खेत से बाहर कर दें। रोग प्रतिरोधी किस्में लगाएं। वायरस फैलाने वाले कीट जैसे– एफिड के नियंत्रण के मेटासिस्टॉक्स 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें।

**लीफ कर्ल–** यह एक वाइरल बीमारी है। इस बीमारी के लक्षण तीन सप्ताह के अन्दर दिखाई देने लगते है। ग्रसित पौधे की पत्तियां नीचे की ओर मुड़ जाती है। पौधों की वृद्धि रुक जाती है। पत्तियों की शिराएं लाल या भूरा रंग में परिवर्तित होने लगती हैं।

**नियंत्रण–** फसल पर मेटासिस्टाक्स 0.1 प्रतिशत का घोल का छिड़काव करने से वायरस फैलाने वाले कीटों का नियंत्रण करके बीमारी का नियंत्रण किया जा सकता है।

**बीज एवं पौध सड़न–** कवक के कारण बीज एवं पौध में सड़न होने लगती है। जिससे खेत में पौधों की संख्या कम दिखाई देती है।

**नियंत्रण–** बीजों का चयन स्वस्थ फसल से करना चाहिए एवं बोने से पहले कवकनाशी जैसे थॉइरम या कार्बेन्डाजिम से बीज को उपचारित करना चाहिए।

**सरकोस्पोरा लीफ स्पॉट–** यह कवक जनित बीमारी है। यह मूंग फसल का मुख्य बीमारी है। इसके लक्षण पत्तियों पर धब्बे तथा वायलेट रंग के धब्बे दिखाई देते है। ये धब्बे पत्तियों पर भी दिखाई देते हैं।

**नियंत्रण–** इसके नियंत्रण के लिए जिनेब या मेंकोजब 75 डब्लू पी का 2 कि.ग्रा./1000 लीटर पानी में घोल बना कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

**एन्थ्रेक्नोज–** यह बीमारी भी कवक जनित बीमारी है। इस बीमारी में पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं।

**नियंत्रण–** इस बीमारी का नियंत्रण स्वस्थ बीजों को बोकर किया जा सकता है। जिनेब या मेंकोजेब 2 कि.ग्रा./1000 लीटर पानी के घोल बना कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव कर बीमारी का नियंत्रण किया जा सकता है।

**सिंचाई एवं जल निकास :**

प्रायः खरीफ में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है, परंतु फूल अवस्था पर सूखे की स्थिति में सिंचाई करने से उपज में काफी बढ़ोतरी होती है। अधिक वर्षा की स्थिति में खेत में पानी का निकास करना जरुरी है। जायद मूंग फसल में खरीफ की तुलना में पानी की ज्यादा आवश्यकता होती है। 10–15 दिन के अंतराल में 3–4 सिंचाई अवश्य करना चाहिए।

**निंदाई व गुडाई :**

प्रथम निदाई बुआई 20–25 दिन के भीतर व दूसरी 40–15 दिन में करना चाहिए। 2–3 बार कोल्पा चलाकर खेत की नीदा रहित रखा जा सकता है। खरपतवार नियंत्रण हेतु नींदा नाशक दवाइयां जैसे–बासालीन या पेन्डीमेथलीन का प्रयोग भी किया जा सकता है। बसालीन 2 ली/हे. के मान से 600–800 लीटर पानी में बोनी के पूर्व छिडकाव करें।

**फसल चक्र एवं अंतरवर्तीय फसल :**

फसल चक्र निम्न फसल चक्र अपनाने से उत्पादन के साथ–साथ भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है।

1. धान आधारित क्षेत्रों के लिए – धान–गेंहूँ, मूंग या धान, मूंग–धान
2. मलवा निमाड क्षेत्र के लिए – अ. मूंग, गेंहूँ–मूंग
   ब. कपास–मूंग–कपास

| अंतरवर्तीय फसल | कतारों का अनुपात |
|---|---|
| 1. ज्वार + मूंग | 4:2 या 6:3 |
| 2. मक्का + मूंग | 4:2 या 6:3 |
| 3. अरहर + मूंग | 2:4 या 2:6 |

**कटाई एवं गहाई :**

मूंग की फलियां जब काली पडने लगे तथा सूख जायें तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। अधिक सूखने पर फलियां चटकने का डर रहता है। फलियों से बीज को थ्रेसर द्वारा या डंडे द्वारा अलग कर लिया जाता है।

**बीज उत्पादन :**

मूंग के बीज उत्पादन हेतु ऐसे खेत चुनने चाहिये जिनमें पिछले मौसम में मूंग नहीं उगाया गया हो। मूंग के लिए निकटवर्ती खेतों से संदुशण को रोकने के लिए फसल के चारों तरफ 10 मीटर की दूरी तक मूंग का दूसरा खेत नहीं होना चाहिये। भूमि की अच्छी पैदावार, उचित खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग, खरपतवार, कीडे एवं बीमारियों के नियंत्रण के साथ साथ समय समय पर अवांछनीय पौधों को निकालते रहना चाहिये तथा फसल पकने पर लाट को अलग सुखाकर दाना निकाल कर ग्रेडिंग कर लेना चाहिए। बीज को साफ करके उपचारित कर सूखे स्थान में रख देना चाहिए। इस प्रकार पैदा किये गये बीज को अगले वर्श बुवाई के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

**उपज एवं आर्थिक लाभ :**

उचित विधियों के प्रयोग द्वारा खेती करने पर मूंग की 7–8 क्विंटल प्रति हेक्टेयर वर्शा आधारित फसल से उपज प्राप्त हो जाती है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में मूंग की खेती करने के लिये 18–20 हजार रुपये का खर्च आ जाता है। मूंग का भाव 40 रुपये प्रति किलो होने पर 12000 से 14000 प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

# पौष्टिक कोदो में समेकित रोग प्रबंधन

**डॉ. ए. के. जैन**
प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान), ज.ने.कृ.वि.वि., कृषि महाविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

कोदो आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में कम उपजाऊ भूमि पर ली जाने वाली एक प्रमुख लघुधान्य फसल है। भारतवर्श में इस फसल का सर्वाधिक क्षेत्रफल मध्य प्रदेश है, जहां इसकी खेती 132.1 हजार हेक्टेयर में की जाती है तथा इसकी उत्पादकता मध्य प्रदेश में 520 किग्रा. प्रति हेक्टेयर है। मध्य प्रदेश के अलावा कोदो की खेती छत्तीसगढ, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, महाराश्ट्र, गुजरात, कर्नाटक आदि में भी की जाती है। पोषक तत्वों एवं औशधीय गुणों से भरपूर इस आंचलिक फसल को आज पौश्टिक अनाज के नाम से भी जाना जाता है। कोदो में सूखा सहने की विशेष क्षमता होती है। अतः इसे **''अकाल राहत धान्य''** भी कहते है। इसमें कीटो का प्रकोप खेत व भंडारण में भी कम होता है। कोदो के दानों में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, पथ्य रेशे तथा ऊर्जा अन्य अनाज फसलों के बराबर या अधिक पायी जाती है। पोषक तत्व जैसे कैल्सियम, फास्पोरस, मैग्निेशियम, जिंक, आयरन तथा अमीनो अम्ल जैसे थइमिन, राइवोफ्लेविन व नियासिन भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं (सारणी 1)।

**सारणीः 1 कोदो के साथ विभिन्न अनाजों की पौष्टिकता की तुलना (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग)**

| फसल का नाम | कार्बोहाइड्रेट (ग्रा.) | प्रोटीन (ग्रा.) | वसा (ग्रा.) | ऊर्जा (कि. केलोरी) | पथ्य रेशे (ग्रा.) | कैल्शियम (मि. ग्रा.) | फास्फोरस (मि. ग्र.) | मैग्निशियम (मि.ग्रा.) | जिंक (मि.ग्रा.) | आयरन (मि.ग्रा.) | थाइमिन (मि.ग्रा.) | राइवोफ्लो–विन(मि.ग्रा.) | नियासिन (मि.ग्रा.) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कोदो | 66.2 | 08.9 | 2.55 | 331 | 06.4 | 15.3 | 101 | 122 | 1.6 | 2.3 | 0.29 | 0.20 | 1.5 |
| रागी | 66.8 | 07.2 | 1.92 | 320 | 11.2 | 364.0 | 210 | 146 | 2.5 | 4.6 | 0.37 | 0.17 | 1.3 |
| कुटकी | 65.5 | 10.1 | 3.89 | 346 | 07.7 | 16.1 | 130 | 91 | 1.8 | 1.2 | 0.26 | 0.05 | 1.3 |
| ज्वार | 67.7 | 09.9 | 1.73 | 334 | 10.2 | 27.6 | 274 | 133 | 1.9 | 3.9 | 0.35 | 0.14 | 2.1 |
| बाजरा | 61.8 | 10.9 | 5.43 | 347 | 11.5 | 27.4 | 289 | 124 | 2.7 | 6.4 | 0.25 | 0.20 | 0.9 |
| गेंहूँ | 64.7 | 10.6 | 1.47 | 321 | 11.2 | 39.4 | 315 | 125 | 2.8 | 3.9 | 0.46 | 0.15 | 2.7 |
| चावल | 78.2 | 07.9 | 0.52 | 356 | 02.8 | 07.5 | 96 | 19 | 1.2 | 0.6 | 0.05 | 0.05 | 1.7 |

**स्रोत : भारतीय खाद्य संगठन सारणी , रापोसं 2017.**

मधुमेह से पीड़ित लोगों को कोदो के चावल का नियमित सेवन फायदेमंद होता है। यह शरीर को गर्म रखता है एवं रक्त में शर्करा की मात्रा को भी नियंत्रित रखता है। इसका उपयोग चावलया रोटी के रूप में स्थानीय उपयोग हेतु बहुतायत से किया जाता है। कोदो का भोजन के रूप में प्रयोग करने से पूर्व 6 महीने तक भन्डारण करना आवश्यक है। इस भन्डारण काल में विभिन्न रासायनिक और जैविक क्रियाओं द्वारा दानों में निहित विशैले पदार्थ समाप्त हो जाते है। आज वातारण में बदलाव एवं रोग जनको की नई प्रजातियों के उद्भव के कारण कोदो की फसल भी विभिन्न अवस्थाओं में रोग व्याधियों से संक्रमित हो रही है। फलस्वरूप उपज की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनो प्रभावित हो रही है। सामान्यतया कोदो की फसल में रोग व्याधियों का संक्रमण कम होता है किन्तु निम्न रोग व्याधियों का संक्रमण लगभग प्रति वर्श किसानों के खेतों में देखा जा रहा है। इन रोगों के संक्रमण को समय पर उपचार द्वारा रोका जा कर उपज में होने वाली हानि को कम किया जा सकता है।

**1. मुंडक कण्डवाः** यह कोदो का प्रमुख कवक जनित वाह्य बीजोढ़ रोग है जोकि स्पोरीसोरियम पेस्पेलाइ थनवरजाई के द्वारा होता है। इसके लक्षण पौधों में बालियॉ निकलने के बाद दिखायी पड़ते है। संक्रमित पौधे की लगभग सभी बालियां काले रंग के कंड पुंज में परिवर्तित हो जाती हैं। कंड पुंज की लम्बाई 2.1 से 14.6 से. मी. व चौड़ाई 0.1 से 0.6 से. मी. पायी गयी है। प्रारम्भिक अवस्था में यह कंड पुंज एक सफेद–भूरी झिल्ली द्वारा घिरा रहता है तथा परिपक्व होने पर झिल्ली फट जाती है एवं काले रंग के बीजाणु हवा के द्वारा बिखर जाते हैं। कोदो की कुछ किस्मों में संक्रमित बाली की ध्वज पत्ती में पीली भूरी धारियां बन जाती हैं। इस रोग के द्वारा 13 से 33 प्रतिशत तक उपज में हानि आंकलित की गयी है।

प्रवंधनः–

(i) कण्डवा ग्रसित बालियों एवं पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

(ii) संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें नत्रजन के साथ स्फुर व पोटाश भी डालें।

(iii) बीजों को बोआई पूर्व जैव रसायन ट्राइकोडर्मा विरिडी से 4–6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।

(iv) बीजों को बोआई के पूर्व कवक नाशी दवा कार्वेन्डाजिम या कार्वोक्सिन या क्लोरोथेलोनिल से 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।

(v) रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे जवाहर कोदो 41, जवाहर कोदो 48, जवाहर कोदो 106, जवाहर कोदो 113, जवाहर कोदो 65, जवाहर कोदो 98, जवाहर कोदो 137 एवं टी. एन. ए. यू. 86 का प्रयोग करें।

**2. पर्णछाद अंगमारीः** इस मृदोढ़ कवक जनित (राइजोक्टोनिया सोलेनाई) रोग का प्रकोप विगत कुछ वर्शो में कोदो की फसल की प्रत्येक अवस्था में देखा जा रहा है। रोग से संक्रमित पौधों की पर्णछाद एवं निचली पत्तियों पर अनियमित आकार के धूसर एवं गाढ़े रंग के धब्बे बन जाते है। अनुकूल वातावरण एवं उच्च आर्द्रता में यह रोग तेजी से फैलता है तथा उग्र अवस्था में धब्बे अनियमित वलय के रूप में दिखायी पड़ते है एवं सम्पूर्ण पौधों पर अंगमारी के लक्षण दिखायी पड़ने लगते हैं। बालियां निकलने के पूर्व रोग के संक्रमण से उपज में अत्यधिक नुकसान होता है। इस रोग के कारण उपज में 29 से 30 प्रतिशत की हानि आंकलित की गयी है।

प्रबंधनः–

(i) संक्रमित खेतों की मृदा को बोआई पूर्व जैव रसायन ट्राइकोडर्मा विरिडी द्वारा 1.5 कि. प्रति एकड़ की दर से उपचारित करें।

(ii) बोआई से पूर्व बीजों को जैव रसायन ट्राइकोडर्मा या स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स द्वारा 5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।

(iii) बीजों को बोने से पूर्व कार्बेन्डाजिम या वेलिडामाइसिन या हेक्साकोनाजोल कवक नाशी दवाओं द्वारा 2 मि. ली. प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। साथ ही इन्ही दवाओं का एक पर्ण छिड़काव रोग के संक्रमण को प्रभावी रूप से कम करता है तथा उपज में सार्थक वृद्वि होती है।

(iv) रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे जवाहर कोदो 13, जवाहर कोदो 98, टी. एन.ए. यू. 86 का प्रयोग करें।

**3. अगियाः** अगिया (स्ट्राइगा) एक आंशिक मूल परजीवी पुष्पीय पौधा है जो कि कोदो की फसल को संक्रमित करता है। इसका प्रकोप हल्की मिट्टी में एवं सूखा पड़ने पर ज्यादा होता है। अगिया पौधे की जड़ से चूशकांग निकलकर कोदो की जड़ों से जल एवं आवश्यक पोषक तत्वों को अवशोषित कर लेते हैं। ऐसे संक्रमित पौधे स्वस्थ पौधों की अपेक्षा कमजोर पीलापन लिये हुये एवं छोटे रह जाते है। संक्रमित पौधों में या तो बालियां निकलती ही नहीं है या यदि निकलती हैं तो उनमें हल्के छोटे दाने बनते हैं। अत्यधिक प्रकोप होने पर कोदो का पूरा खेत झुलसा हुआ दिखायी पड़ता है। अगिया की मुख्यतः दो प्रजातियां स्ट्राइगा ऐसियाटिका व स्ट्राइगा डेन्सीफ्लोरा कोदो को ज्यादा संक्रमित करती है।

**प्रवंधन–**

(i) अगिया के पौधे को फूल अवस्था में आने से पूर्व निंदाई के दौरान उखाड़कर नष्ट कर दें।

(ii) अगिया से संक्रमित खेतों में फसल चक्र के रूप में कपास, मूंगफली, सूर्यमुखी या दलहनी फसलों का प्रयोग करें। ये फसलें अगिया के बीजों को अंकुरित करने में सहायक होती हैं, किन्तु फसल को संक्रमित नही करती हैं।

(iii) खेतों में नत्रजन युक्त खाद का प्रयोग करने पर भी अगिया के बीजों का अंकुरण कम होता है तथा फसल कम संक्रमित होती है।

(iv) नींदानाशी का उपयोग कोदो में आर्थिक रूप से लाभप्रद नहीं पाया गया है।

(v) रोग प्रतिरोधक जातियों जैसे जवाहर कोदो 41, जवाहर कोदो 155 को बोयें।

**4. कोदो में मतोनापनः** कोदो एक उच्च पोशकता वाला अनाज है किन्तु कभी–कभी संक्रमित कोदो के खाने से मनुष्यों एवं चौपाये जानवरों में अचेतन, सन्निपाद, उन्माद, कंपकपी, चक्कर आना, पेट दर्द होना, बार–बार उल्टी होना आदि लक्षण दिखायी पड़ने लगते हैं। इसे मतौना या मतैलापन कहते हैं। संक्रमित कोदो खाने से जानवर अपने पैरों में खड़े नही हो पाते है एवं बैठकर प्रलाप करने लगते हैं। कभी–कभी जानवरों की मौत भी हो जाती है। कम मात्रा में संक्रमित दाने खाने से 1 से 3 दिन में मतौना का असर समाप्त हो जाता है। मतौना का प्रमुख कारण कोदो के दानो व भूसा में फफूंद का संक्रमण होना है। करीब–करीब 4 से 6 प्रकार की फफूंद दाने की ऊपरी सतह को संक्रमित करके जीव विश जैसे अफलाटाक्सिन, साइक्लोपियेजोनिक अम्ल एवं पेंस्पेलिन स्त्रावित करती है जोकि दानों में अवशोशित हो जाता है। ऐसे दानो या

भूसा के खाने से मतौनापन की समस्या आ जाती है।

**प्रवंधन–** कोदो के दानों मे फफूंद का संक्रमण अधपकी फसल काट लिये जाने पर या फसल कटाई के समय अधिक नम मौसम या वर्षा होने पर या खलिहान में फसल कटाई के बाद जल से भीगने के कारण हो जाता है। अतः निम्न सावधानियों द्वारा फसल को संक्रमित होने से बचाया जा सकता है।

(i) कोदो की कटाई पूर्णतः पकने की अवस्था में ही करें।

(ii) खलिहान में फसल को गीला होने से बचायें। गहाई के पश्चात दानों को धूप में अच्छी तरह सुखाकर ही भंडारित करें।

(iii) नवीन उत्पादित कोदो को करीब 6 माह भंडारण के बाद ही उपयोग में लायें।

(iv) संक्रमित कोदो के खाने के बाद मतौना के लक्षण दिखाई पड़ते ही पीड़ित को केले के तने का रस या छाछ या इमली का पानी या अचार आदि खिलाये एवं चिकित्सक को दिखायें।

(v) संक्रमित कोदो को सूखे गोबर से 24 घंटे उपचारित करें एवं साफ पानी से घोकर व सुखाकर खाने के लिये उपयोग में लायें।

**कोदो की रोग व्याधियों के प्रमुख लक्षण (बायें) मुंडक कण्डवा (बीच में) पर्णछाद अंगमारी (दायें) अगिया**

# जैविक कृषिः एक आवश्यकता

**राहुल कुमार वर्मा[1], विनीता विष्ठ[2], अरविंद कुमार गुप्ता[3], आर. बी. वर्मा[4] व विजय कुमार[5]**

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र मधेपुरा, [2]बाँदा कृषि एवं प्रौद्यो. विश्वविद्यालय, बाँदा

[3]बिहार कृषि विश्वविद्यालय सबौर, [4]उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय नालंदा

आज के परिवेश में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। किसान भाई कृषि में उर्वरकों, कीटनाशी, खरपतवारनाशी व कवकनाशी आदि के अधाधुंध प्रयोग से खेती की उपज क्षमता, मिट्टी की उर्वरा शक्ति, भूमि की संरचना व उसके भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को देखते हुए किसान भाई जैविक खेती की ओर धीरे–धीरे रुख कर रहे हैं। जैविक खेती करने की लिए सर्वप्रथम किसान भाइयों को ये जानना जरूरी है कि जैविक खेती क्या है? और इसकी क्या आवश्यकता है?

## जैविक खेती क्या हैः

जैविक खेती फसल उगाने की वह प्रक्रिया है जिसमे मिट्टी को स्वस्थ रखते हुए इसमें जैविक अवशेषों (जो फसल, पशुओं, खेती व अन्य संसाधनों से पैदा होते हैं ) का अधिकतम प्रयोग होता है।

किसी भी जीन का अंश जो पोषक तत्वों को उपलब्धता कराये उसे जैविक उर्वरक कहते हैं। इसमें गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट, नाडेप, हरी खाद, हड्डी का चूरा, नीम, अरण्डी, सरसों व करंज की खलियाँ, वनस्पतिक खलियां एव जीवाणु खाद में राइजोबियम, शैवाल, फास्फोरस को घुलनशील बनाने वाले जीवाणु व फफूँद आते हैं।

## जैविक कृषि की आवश्यकताः

1. रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशी रासायनों के असंतुलित प्रयोग से भूमि की उत्पादन क्षमता में निरंतर हो रही कमी को दूर करने में ।
2. उर्वरकों, कीटनाशी, फफूँदनाशी, व खरपतवारनाशी के उपयोग से खेती में बढ़ रही लागत को कम करने के लिए।
3. राष्ट्रीय स्तर पर उर्वरकों की बढ़ती हुई कीमत एवं मांग तथा पूर्ति के बीच बढ़ते अन्तर को कम करने के लिए।
4. प्राकृतिक संतुलन के साथ–साथ पारिस्थिकि मित्रों को सुरक्षित रखने के लिए।
5. कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए।

हमारे देश में जैविक खेती का इतिहास लगभग 5000 साल से भी अधिक पुराना है। यह सजीव जैविक खेती ही थी जिसने इतने लंबे समय तक अनवरत अन्न उत्पादन के साथ मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाये रखा जिससे खाद्य, सुरक्षा एवं पोषणीय सुरक्षा संभव हो सकती है।

## जैविक खादों के गुणः

**1. कम लागत–** रासायनिक उर्वरकों, खरपतवारों की तुलना में कम खर्च में फसल तैयार कर सकते हैं।

**2. स्थानीय उपलब्धता–** जैविक कृषि उत्पादों की उपलब्धता ग्रामीण स्तर पर ही हो सकती है।

**3. सुग्राह्यता–** विषहीन, प्रदूषण मूलक, प्राकृतिक संसाधनों से तैयार की गयी जैविक खादें आसानी से अपनायी जा सकती है, जैविक खाद पर्यावरण मित्रवत होती हैं।

**4. उत्पादकता–** जैविक खादों से उत्पादित पदार्थों की गुणवत्ता, पौष्टिकता एवं उत्पादन क्षमता में निरंतर वृद्धि होती है।

**5. पोषणीयता–** जैविक खादों के संतुलित प्रयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक संरचना में गुणोत्तर वृद्धि होती है, जैविक उत्पाद अधिक स्वास्थ्यवर्धक होते हैं।

**6. विविधिकरण–** जैविक तकनीक व स्थानीय कृषि तकनीक से समन्वित कृषि का विकास होता है, जैविक खेती और जैव विभिन्नता व विविधिकरण के संतुलित विकास में सहायक होते हैं।

**7. भंडारण क्षमता–** जैविक खादों के प्रयोग से उत्पादित कृषि उत्पादनों में भंडरण क्षमता तुलनात्मक रूप से लगभग 30–40 प्रतिशत अधिक होती है।

**8. निर्यात में प्रोत्साहन–** जैविक कृषि उत्पादों की बिक्री व निर्यात में प्रोत्साहन तो मिलता ही है, कृषि उत्पादों पर बाजार में 30–40 प्रतिशत तक अधिक मूल्य भी मिलता है।

## जैविक खेती कैसे किया जाएः

प्रायः किसानों को ये समझ में नहीं आता है कि जैविक उर्वरक को कब और कितनी मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। शुष्क दशाओं में जैविक उर्वरकों का प्रयोग न्यूनतम या बिल्कुल नहीं करना चाहिए।

**1. हरी खाद का प्रयोग–**

**जैविक कृषि तकनीकः** भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने हेतु बिना सड़े–गले हरे पौधों एवं उसके भागों को खेत में दबाने को हरी खाद कहते हैं। हरी खाद के लिए सनई, ढैचा, लोबिया, ग्वार, बरसीम आदि का प्रयोग किया जाता है।

फूल निकलने की अवस्था से पहले मिट्टी में दबा देते हैं।

इस अवस्था पर पलटाई करने से मृदा को अधिक मात्रा में नत्रजन व जीवांश प्राप्त होते हैं। सनई में लगभग 50 एव ढैंचा में 45 दिन पर यह अवस्था आती है। अच्छी वर्शा वाले क्षेत्रों में यह विधि काफी लाभदायक है। मिट्टी में दबाने के 30–40 दिन बाद ही खेत में फसल को लगानी चाहिए। हरी खाद के प्रयोग से 20–25 किग्रा. नत्रजन प्राप्त की जा सकती है। प्रतिदिन बबूल की पत्तियों के प्रयोग से 30–35 किग्रा. नत्रजन, 2.5–2.8 किग्रा. फास्फोरस एवं 14–15 किग्रा. पोटाश मिलती हैं।

सनई फसल हरी घास के रूप में

**2. दलहनी फसलों का प्रयोग–** दलहनी फसलों को सब्जियों के साथ अन्तः फसल या हरी खाद के रूप में सम्मिलित करने से सब्जियों की पैदावार के साथ–साथ उपज में स्थिरता भी आती है। दलहनी फसलों में वायुमंडलीय नत्रजन का यौगिकीकरण करके मृदा में नत्रजन का यौगिकीकरण करके नत्रजन को स्थिर करती है। लोबिया, मटर, सोयाबीन, मूंगफली इत्यादि दलहनी फसलों से 40–90 किग्रा.०/हे. नत्रजन का लाभ मिलता है।

**3. वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग–**

यह जैविक खाद केंचुओं द्वारा तैयार किया जाता है। इसमें नत्रजन (0.8–1.2 प्रतिशत), फास्फोरस (0.7–1.2 प्रतिशत) तथा पोटाश (1. 0–1.5 प्रतिशत) के अतिरिक्त सुक्ष्म पोशक तत्व भी पाये जाते हैं जो

वर्मीकल्चर

वर्मीकम्पोस्ट

भूमि की उर्वरा शक्ति को भी बढ़ाते हैं और साथ में जलधारा की क्षमता को भी बढ़ाते हैं। खेत की अंतिम तैयारी के समय 2–3 टन/हे. की दर से अच्छी तरह मिला देते हैं। वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग के बाद किसी रायायनिक दबाओं अथवा उर्वरकों का प्रयोग न करें।

**4. खलियों का प्रयोग–** जैविक खाद के रूप में खली का प्रयोग करते हैं जिसके अंतर्गत अण्डी, कपास, करंज, महुआ, सरसों, सूर्यमुखी, नीम की खलियां प्रयोग में लायी जाती हैं। नीम की खली में नत्रजन,

नीम की खली

फास्फोरस, पोटाश की भरपूर मात्रा होने के साथ–साथ एजाडिरैक्टिन नामक रासायन पाया जाता है जो रोग एवं कीटनाशी का कार्य भी करता है। खली के प्रयोग से 7–10 दिनों के अंदर नत्रजन उपलब्ध हो जाता है और महुआ की खली 60 दिनों बाद नत्रजन मुक्त करता है। नीम की खली का प्रयोग 2.5–3.0 क्विंटल/हे की दर से करना चाहिए।

**जैविक खादों में पोषक तत्वों की मात्राः**

| खाद का नाम | पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा | | |
|---|---|---|---|
| | नत्रजन | फास्फोरस | पोटाश |
| गोबर की खाद | 0.3–0.5 | 0.2 – 0.3 | 0.4–0.5 |
| कम्पोस्ट | 0.5–1.0 | 0.5–0.9 | 0.7–1.0 |
| वर्मी कम्पोस्ट | 1.7–2.5 | 1.5–2.3 | 1.3–2.0 |
| हरी खाद | 0.5–0.7 | 0.1–0.2 | 0.6–0.8 |
| गोबर गैस खाद | 1.6–1.8 | 1.1–2.0 | 0.8–1.2 |
| नीम की खली | 5.20 | 1.0 | 1.2 |

### जीवाणु खादों का प्रयोगः

कुछ जीवाणु पौधों की जड़ों के पास रहकर वायुमंडलीय नत्रजन का यौगिकीकरण करते हैं या भूमि में उपलब्ध अघुलनशील फास्फोरस को पौधों के लिए उपयोगी बनाते हैं। जीवाणु खादों के प्रयोग से पौधों में वृद्धि एवं उपज बढ़ाने के साथ–साथ भूमि की उर्वरा शक्ति भी बनाये रखते हैं। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम एवं फास्फोबैक्टिरिया प्रमुख रूप से सब्जियों में व्यवहारिक हैं।

- दलहनी फसलों एवं सब्जियों में नत्रजन की उपलब्धता बढ़ाने के लिए राइजोबियम जीवाणु खाद का प्रयोग करना चाहिए। इस खाद के प्रयोग करने से राइजोबियम जड़ में गॉठ बना लेते हैं तथा वायुमंडलीय नत्रजन को अवशोषित कर इसी गॉठ में जमा करते हैं और बदले में पौधे से भोजन हेतु शर्करा और जल लेते हैं। ये जीवाणु 50–135 किग्रा. नत्रजन/हे. मृदा में स्थिर कर सकते हैं। इस प्रकार से राइजोबियम जैव उर्वरक के प्रयोग से 10–30 किलो रासायनिक नत्रजन की बचत होती है।
- एजोटोबैक्टर का प्रयोग सब्जी वाली फसलों जैसे टमाटर, आलू, बैगन तथा प्याज आदि एवं नगदी फसलों जैसे कपास आदि एवं सरसों में किया जाता है, ये जीवाणु वायुमंडल की नत्रजन का जैविक स्थिरिकरण कर मृदा में पौधों को प्रदान कर 15–20 किग्रा. नत्रजन प्रति हे. की बचत करता है। इसके साथ ही यह जीवाणु पौध वृद्धि करने वाले उत्प्रेरक स्रावित करता है। जो बीज के जमाव एवं जड़ फैलाने में सहायता कर पौधों के पोशक तत्वों की उपलब्धता प्रदान करते हैं।
- एजोस्पिरिलम एक असहजीवी जीवाणु है जो वायुमंडलीय नत्रजन पौधों को प्रदान करता है। इसका प्रयोग अनाज वाली फसलों जैसे ज्वार, बाजरा, रागी, मोटे अनाजों, छोटे अनाजों एवं जई आदि में किया जाता है, यह 15–20 किग्रा. नत्रजन प्रति हे. की बचत करता है।
- फास्फोरस विलेयी जीवाणु का उपयोग मृदा में मौजूद अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील सतहों पर उपलब्ध कराता है।
- नील हरित शैवाल नत्रजन के साथ–साथ कार्बन एव पादप वृद्धि करने वाला पदार्थ भी उपलब्ध कराता है। 500 ग्राम का पैकेट एक एकड़ धान की फसल को उपचारित करने के लिए काफी होता है। जीवाणु खाद का प्रयोग बीजोपचार, कटींग उपचार, बिचड़ा उपचार व मिट्टी उपचार के रूप में किया जाता है।

**बीजोपचार–** इस विधि में 250 ग्राम गुड़ को एक लीटर पानी में उबालकर ठंडा कर लेते हैं तत्पश्चात् 500 ग्राम जीवाणु खाद को तथा एक हेक्टेयर के लिए आवश्यक बीज को अच्छी तरह मिलाकर 15–20 मिनट तक छायेदार स्थान पर सुखाने के बाद बीज की बुआई कर दें। जीवाणु कल्चर को धूप में नहीं सुखाना चाहिए।

**कन्द उपचार–** कन्द उपचार हेतु 2 किग्रा. कल्चर को 5 लीटर पानी में अच्छी तरह मिलाकर एक हेक्टेयर खेत की बुआई हेतु पर्याप्त कन्दों को इससे उपचारित करके 20–25 मिनट तक छायादार स्थान पर सुखा लेते हैं। और उसके बाद खेत में बुआई कर देते हैं।

**मिट्टी उपचार–** इसमें अपेक्षाकृत ज्यादा कल्चर की आवश्यकता होती है। मिट्टी उपचार के लिए 2 किग्रा. कल्चर को 25 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद एवं 25 किग्रा. भुरभुरी मिट्टी के साथ अच्छी प्रकार मिलाकर 15 दिनों के लिए गीली जूट की बोरी से ढक कर रखा जाता है। बीच में 5 दिनों के अंतराल पर पलटते रहते हैं। 15 दिनों बाद इसे 1 हे० भूमि में मिला दिया जाता है।

**पौध जड़ उपचार विधि–** धान तथा सब्जी वाली फसलों जैसे टमाटर, फूलगोभी तथा प्याज आदि फसलों में जिसमें पौधों की रोपाई की जाती है। इनकी जड़ों को जीवाणु कल्चर द्वारा उपचारित किया जाता जा सकता है। इसके लिए किसी चौड़े व छिछले वर्तन में 5–10 लीटर पानी में 1 किग्रा. जीवाणु कल्चर मिला देते हैं। इसके उपरान्त नर्सरी से पौधों उखाड़ कर 100–100 पौधों का बंडल बांध लेना चाहिए। बांधे हुए पौधों के बंडलों का इस घोल में 15–20 मिनट तक डुबाये रखते हैं। इसके उपरान्त रोपाई करते हैं। इससे पौध जड़ों में जीवाणु की क्रिया तेजी से होती है। तथा पौधों को तत्काल लाभ प्राप्त होता है।

### जीवाणु कल्चर प्रयोग में सावधानियांः

1. जीवाणु कल्चर का प्रयोग निर्धारित समय में पूर्व करना चाहिए।
2. उपचारित बीजों को सूर्य की सीधी रोशनी से दूर ठंडे स्थानों पर रखना चाहिए।
3. फसल विशेष के लिए विशिष्ट कल्चर का प्रयोग करें।
4. बीजोपचार, यदि रसायन से भी करना है तो पहले फफूंदनाशक, कीटनाशक तत्पश्चात् जैव उर्वरक से बीजोपचार करना चाहिए।
5. उपचारित बीज को सायंकाल तक अवश्य बुआई करें।

### कीट और बीमारियों का जैविक प्रबंधः

रासायनिक उर्वरकों के अति प्रयोग से कीटों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के साथ जल प्रदूषण तथा फसल उत्पादकों में उसके अवशेषों

से मानव स्वास्थ्य भी प्रभावित हो रहा है। इनका नियंत्रण निम्न तरीकों से किया जा सकता है:–

1. मिट्टी का सौर्यीकरण करके विषाणु जनित बिमारियों से बचाव।
2. फेरोमेन द्वारा कीटों को पकड़कर।
3. नीम, करंज आदि की खली का प्रयोग करके।
4. ट्रैप फसलों को उपयोग कर कीटों का नियंत्रण (सरसों, सूरजमूखी)।
5. प्रतिरोधी पौधे लगाकर।
6. जैविक कीटनाशी व बीमारी नाशक जो कीड़े–मकोड़े व रोगों से फसलों की रक्षा कर उत्पादन में वृद्धि करते हैं।

- **व्यूवेरिया वेसीयानाः** 4–5 ग्राम /ली. पानी के साथ (डायमंड बैक के साथ सफेद मक्खी, माहू आदि)
- **कार्टीसिलियम लीकानीः** 1 ग्राम/500 लीटर पानी में घोलकर (सफेद मक्खी, माहू, थ्रिप्स)
- **ट्राइकोडर्माः** 10–12 क्विं./हे. में 10–15 दिनों के अंतराल पर 3–4 फसल में लगा देते हैं। ट्राइकोडर्मा विरडी एक जैविक फफूंद नाशक है जो सब्जियों में जड़ सड़न, तना गलन, झुलसा आदि रोगों के नियंत्रण हेतु प्रभावकारी होता है। नर्सरी में 2–4 ग्राम/कि० बीज उपचारित करने में।

# उन्नत कृषि तकनीकीः संरक्षित खेती

**अंकिता पाण्डेय, लक्ष्मी, व आकांक्षा पाण्डेय**
कृषि विज्ञान केन्द्र, देवास

संरक्षित खेती, कृषि की ऐसी परिष्कृत तकनीकी है, जो पौधों की बढ़वार हेतु उपयुक्त वातावरण प्रदान करती है। इस तकनीकी द्वारा पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव डालने वाले कारक जैसे अधिक वर्षा, तापमान, सौर्य विकिरण, पाला, कीट, रोग आदि से पौधों को सुरक्षा प्रदान की जाती है और पौधों के समीप अच्छी बढ़वार एवं पैदावर हेतु उपयुक्त सूक्ष्म वातावरण तैयार किया जाता है।

## संरक्षित खेती के मुख्य लाभ

- जैविक एवं अजैविक कारकों से फसल को सुरक्षा।
- ध भूमि एवं जल का बेहतर उपयोग।
- अधिकतम लाभ हेतु बेमौसम फसल उत्पादन संभव।
- जैविक खेती का मजबूत आधार।
- कम क्षेत्रफल में अधिक उत्पादन संभव।
- शहरों के आसपास के क्षेत्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी।
- खुले खेतों की अपेक्षा गुणवत्ता युक्त उत्पादन प्राप्त होता है।
- ग्रामीण युवाओं हेतु स्वरोजगार की अधिक संभावना।

## संरक्षित खेती की विभिन्न प्रकार की संरचनायेः

संरक्षित खेती के अंतर्गत विभिन्न प्रकार संरचनाओं का फसल उत्पादन हेतु उपयोग किया जाता है, जैसे – ग्रीन हाउस अथवा पाली हाउस, शेडनेट हाउस या छाया घर, वॉक इन टनल, लो टनल आदि।

**ग्रीनहाउस अथवा पॉली हाउस–** ग्रीनहाउस पॉलीथीन से बना हुआ अर्द्ध चंद्राकार या झोपड़नुमा संरचना होती है, जिसके अन्दर नियंत्रित वातावरण में पौधों को उगाया जाता है। इसमें उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारक जैसे सूर्य का प्रकाश, तापमान, आर्द्रता आदि विभिन्न कारकों पर नियंत्रण होता है। ठण्ड की अधिकता में जहां खुले वातावरण में पाला पड़ने के कारण फसल आसानी से प्राप्त नही की जा सकती, वही ग्रीनहाउस में सफलतापूर्वक इसका उत्पादन किया जा सकता है क्योंकि ग्रीनहाउस में पाले का प्रभाव नही पड़ता। ग्रीनहाउस में सूर्य प्रकाश की विकिरण से प्राप्त ऊर्जा ग्रीनहाउस के अंदर संचित की जाती है, जिससे इसका सूक्ष्म वातावरण बदल जाता है। तापमान बढ़ने से अधिकतर फसलों का उत्पादन ग्रीनहाउस के नियंत्रित वातावरण में संभव हो सकता है। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में ग्रीनहाउस में तापमान की अधिकता होने पर फैन एवं पेड अथवा फॉगर एवं क्रॉस वेंटीलेशन के द्वारा तापमान को कम किया जा सकता है।

**ग्रीनहाउस के लाभ–**

- सामान्य खेत में सब्जियों का सफल एवं अधिक उत्पादन लेना संभव नही होता है, जबकि ग्रीनहाउस में सफलतापूर्वक लिया जा सकता है।
- स्थान विशेष में कुछ सब्जियों को ग्रीनहाउस के अंदर वर्ष पर्यन्त उगाया जा सकता है।
- ग्रीनहाउस में उगायी गई फसल उत्तम गुणवत्ता वाली होती है, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।
- खुले खेतों की अपेक्षा ग्रीनहाउस की उत्पादकता कई गुना अधिक होती है।
- ग्रीनहाउस के नियंत्रित वातावरण में फसल सुरक्षा आसान होती है।
- भारत जैसे देश में जहाँ कृषि योग्य भूमि काफी कम है, वहीं ग्रीनहाउस के उपयोग से उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।
- ग्रीनहाउस में सब्जियों की नर्सरी के साथ–साथ फलों की नर्सरी हेतु अलैंगिक प्रवर्धन के लिये भी उपयुक्त वातावरण होता है।
- सब्जियों में जैविक खादों का उपयोग कर अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

## ग्रीनहाउस में खेती हेतु फसलों के उपयुक्त किस्मेंः

| फसल | उपयुक्त किस्में |
|---|---|
| **सब्जी** | |
| टमाटर | अविनाश–3, बादशाह, हिमसोहना, नुन 7730, जी.एस.600, नवीन, अर्का, वरदान, तनुजा |
| चैरी टमाटर | रोजा, लैला, शीजा, 818 |
| शिमला मिर्च | लालः बाम्बी, एन–एस–280, नुन–3019, भारत<br>पीलाः आरबेले, एन.एस.–281, स्वर्णा<br>हराः इंदिरा, केलीफोर्निया वंडर, बुफैलो–476 |
| खीरा (गायनो डायसियस) | कियान, साईटिस, हिल्टन |
| **फूल** | |
| जखरा | सोनाटा, ग्लोरिया, नताषा |
| कार्नेषन | विलियम सिम, पिच डिलाईट, गोल्डी लौक |
| एन्थूरियम | रोड डल्फ, कैडी, सरप्राईज, जमैका |
| गुलाब | नोबलिस, ग्रेंडगाला, फस्ट रेड, सुमाराई, ट्रापीकल अमेजान, बोर्डोक्स |

**शेडनेट (छायादार):** शेडनेट हाउस एक जस्तीकृत पाइप/ ऐंगल आयरन/ लकड़ी/ बाँस का बना एक मजबूत ढाँचा है, जिसे पराबैंगनी अवरोधी प्लास्टिक धागे से बने जाल से ढंका जाता है। ये सूर्य के किरणों की सघनता तथा तापमान को कम करके पौधों को आंशिक रुप से नियंत्रित वातावरण प्रदान करते हैं, इसलिए इनके अन्दर वर्ष भर मौसमी फसलों का उत्पादन संभव हो पाता है। शेडनेट के निर्माण में प्रयुक्त सामग्रियों एवं डिजाईन के अनुसार इसके निर्माण में 300–600 रुपये प्रति वर्ग मीटर की लागत आती है।

**शेडनेट के उपयोग :**

- ये फूलों, पत्तेदार पौधों, औषधि पौधों, खुशबूदार पौधों, सब्जियाँ और मसाले आदि फसलों की खेती करने में उपयोग होता है।
- गर्मी के मौसम में फसल की पैदावार बढ़ाने में सहायक होता है।
- फसल को गर्मी, ओले, कोहरे (पाला), बर्फ, पक्षियों, कीट–पंतगों तथा प्राकृतिक आपदाओं द्वारा होने वाले नुकसान से बचाव करने में सहायक होता है।
- सब्जियों की नर्सरी, कलमों से फल पौध तैयार करने में सहायक होता है।
- ऊतक संवर्धन से तैयार पौध को सख्त करने में सहायक होती है।

**षेडनेट के प्रकार:**

प्रत्येक पौधे को रोशनी तथा छाया की आवश्यकता अलग–अलग होती है। जिसकी उपलब्धता पर ये अच्छी तरह फलते–फूलते हैं। छाया जाली का सही रंग तथा छाया प्रतिशत का चयन पौधों के लिए सही वातावरण तथा पैदावार बढ़ाने के लिए अहम भूमिका निभाता है। शेडनेट (छाया जाली) सफेद, काला, लाल, हरा, नीला, सिल्वर आदि रंगो में उपलब्ध है। शेडनेट विभिन्न प्रकार के छाया धनत्व जैसे 35, 50, 70 और 90 प्रतिशत में उपलब्ध है।

**कीट अवरोधी नेट हाउस:**

कीट अवरोधी नेट हाउस जंग रोधी पाईप/ लकड़ी/ बाँस एवं जाली से बनी स्थायी अथवा अस्थायी संरचना है, जिसका मुख्य उद्देश्य फसल अथवा पौधों को विभिन्न प्रकार के कीटों एवं इनसे फैलने वाली वायरस जनित बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करना होता है। इस संरचना में आवरण के रुप में 40 मेश की पराबैगनी अवरोधी जाली का प्रयोग किया जाता है, जो कि पौधों को रसचूसक कीट जैसे सफेद मक्खी, माहो तथा तना एवं फल छेदक कीड़े से सुरक्षा प्रदान करती है। इस प्रकार के नेट हाउस में मिर्च, शिमला मिर्च, खीरा, भिण्डी, टमाटर, बैंगन आदि फसलों को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। जिससे न केवल पौधों में वायरस जनित रोग फैलाने वाले कीटों एवं अन्य छेदक कीटों को रोका जाता है, बल्कि फसलों पर कीटनाशकों का प्रयोग करने से भी छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार के नेट हाउस में प्रयोग की जाने वाली सामग्रियों एवं डिजाईन के आधार पर 250 से 400 रुपये प्रति वर्ग मीटर की लागत में बनाया जा सकता है।

**वॉक–इन टनल:**

वॉक–इन टनल, संरक्षित खेती हेतु पॉली हाउस का ही एक छोटा रुप है, जो कि जंगरोधी जी.आई पाईप अथवा बाँस तथा पराबैंगनी अवरोधी प्लास्टिक फिल्म की सहायता से बनाई जाती है। इस अस्थायी संरचना का उपयोग अत्यधिक सर्दी के मौसम में कद्दू वर्गीय सब्जियों – जैसे लौकी, कद्दू, खीरा तथा टमाटर आदि सब्जियों को बेमौसम उपजाकर अत्यधिक लाभ प्राप्त कर सकते है। इन वॉक–इन टनल के उपरी आवरण के रुप में कीट अवरोधी जाली का प्रयोग कर रोग विषाणु रहित सब्जी पौध उत्पादन भी किया जा सकता है तथा कीट अवरोधी जाली के ऊपर शेड नेट को बिछाकर ग्रीष्म ऋतु में भी फसल उत्पादन संभव है। इसके निर्माण में लगभग 150–200 रुपये प्रति वर्ग मीटर की लागत आती है।

**वॉक–इन टनल में मौसमी सब्जी उत्पादन हेतु फसलें एवं इनका आर्थिक विवरण:**

| फसल | फसल अवधि | उपज (क्वि./हे.) | लाभ/हे. (लाख) |
|---|---|---|---|
| टमाटर | अक्टूबर से फरवरी | 250-300 | 1.0-1.5 |
| खीरा | अक्टूबर से फरवरी | 150-200 | 1.0-1.5 |
| कद्दू | अक्टूबर से फरवरी | 250-300 | 1.5-2.0 |
| लौकी | अक्टूबर से फरवरी | 250-300 | 2.0-2.5 |
| इन टनल में वर्षा में कीट अवरोधी जाली एवं प्लास्टिक लगाकर सब्जी पौध उत्पादन एवं धनिया तथा अन्य पत्तेदार सब्जियों का उत्पादन किया जा सकता है। | | | |

**लो–टनल (निचली सुरंगे):**

यह संरक्षित खेती की ऐसी प्रणाली है, जो कि ग्रीन हाउस सिद्धांत पर कार्य करती है। इसका प्रमुख उद्देश्य फसलों को कम तापमान, पाला, पक्षियों से बचाते हुऐ बेमौसम सब्जी उत्पादन करना होता है। ऐसी संरचना बनाने के लिए पहले खेत में एक मीटर चौड़ी क्यारियॉ तैयार की जाती है ताकि उन पर ड्रिप सिंचाई हेतु पाईप फैलाकर उन पर पतले तार के हुक्स (अर्धचंद्रकार) इस प्रकार लगाये जाते है जिससे हुक्स के दोनों सिरों की 75–110 से.मी. तथा तार के मध्य से ऊँचाई लगभग 60–80 से.मी. रहे तथा इनको 1.5 से 2.0 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है।

इसके बाद इनमें पहले से तैयार बेल वाली सब्जियों के पौधों की रोपाई करके 25–50 माइक्रान मोटी पारदर्शी प्लास्टिक से ढक दिया जाता है। जिससे उस के अंदर पौधों के आसपास का सूक्ष्म वातावरण बदल जाता है और धूप निकले पर अंदर का तापमान 10 डिग्री से.ग्रे. तक बढ़ जाता है।

इस प्रकार की संरक्षित संरचनाओं में लौकी, खीरा, करेला, टिण्डा, खरबूजा व अन्य कद्दू वर्गीय सब्जियों को मुख्य मौसम से 30–60 दिन पहले उगाया जा सकता है, और बाजार में अच्छी कीमत

पाई जा सकती है।

### संरक्षित खेती में ध्यान देने योग्य बातें:

- हमेशा बेमौसमी फसल उत्पादन का चयन करें।
- लंबवत एवं क्षैतिज स्थान का पूर्ण रुप से उपयोग करें।
- संरक्षित खेती हेतु केवल अनुशंसित फसल की किस्म का ही चयन करें।
- बाजार भाव के अनुसार फसल चक्र अपनाएं।
- अधिकतम पौध सघनता अपनाऐं।
- वर्ष में एक बार सौर्यीकरण द्वारा मृदा उपचार करें, जिससे रोग एवं कीट की रोकथाम की जा सके।
- भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने हेतु रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैविक खादों का आवश्यक रुप से उपयोग करें।

इस प्रकार कृषक इन कम लागत वाली संरक्षित कृषि तकनीकी को अपनाकर उच्चगुणवत्ता वाली फसल उत्पादित करके शहरों में उपलब्ध उच्च बाजार में बेचकर निश्चित तौर पर अधिक लाभ कमा सकते है। यही नही लगातार बदलते जलवायु परिवर्तन तथा कृषि योग्य भूमि व कृषि हेतु उपलब्ध जल पर औघोगीकरण व शहरीकरण के कारण लगातार बढ़ते दबाव के परिप्रेक्ष्य में भी इस प्रकार की तकनीकी की आवश्यकता व इसका महत्व और बढ़ जाता है।

## ड्रिप सिंचाई प्रणाली

### ड्रिप सिंचाई तंत्र के लाभ:

**1. पानी की बचत–** इस प्रणाली के द्वारा 70 प्रतिशत तक जल की बचत की जा सकती है और बचे हुए पानी से अतिरिक्त क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है। इसमें जल उपयोग की दक्षता 80–90 प्रतिशत होती है।

**2. खारे जल का उपयोग–** इस प्रणाली के द्वारा खारे जल को भी सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। सिंचाई की आवृत्ति अधिक होने के कारण जड़ों के पास अधिक नमी रहती है और लवणों की सान्द्रता हानिकारक स्तर से कम रहती है। इस प्रकार खारे जल से सिंचाई करने हेतु टपक सिंचाई प्रणाली ही एक मात्र साधन है।

**3. उत्पादन एवं गुणवत्ता में वृद्धि–** सिंचाई की आवृत्ति जल्दी होने की वजह से फसलों को जरुरी मात्रा में समयानुसार पानी मिलता रहता है, जिससे मिट्टी में जल तनाव नहीं रहता है। जमीन के अदंर पानी और हवा का समन्वय होता है, जिससे पानी की कमी या अधिकता का खास असर नहीं होता है। जिसके परिणाम स्वरुप उच्च गुणवत्ता के फल एवं सब्जियाँ प्राप्त होती हैं और फसलों के उत्पादन में वृद्धि होती है।

**4. सभी प्रकार की मृदा में उपयोग–** वह भू–भाग जो अन्य विधियों द्वारा सिंचित नही किए जा सकते हैं, उनमें ड्रिप विधि के द्वारा सिंचाई किया जा सकता है। इस विधि में जल के वितरण को मृदा की प्रकार के अनुसार नियोजित किया जा सकता है। इसलिए इस प्रणाली को उबड़–खाबड़ एवं क्षार युक्त किसी भी मृदा में उपयोग किया जा सकता है।

**5. खाद की बचत–** इस प्रणाली के द्वारा लगभग 30 से 45 प्रतिशत तक खाद की बचत होती है। खाद फसल में समान रुप से पौधों की जड़ों के पास घुलनशील अवस्था में प्राप्त होती है, जिससे उसके उपयोग की दक्षता बढ़ जाती है।

**6. खरपतवार में कमी–** सीधे पौधों के जड़ क्षेत्रों में पानी दिया जाता है, जिससे आस–पास की जमीन सूखी रहने से खरपतवार में कमी आती है। परिणामस्वरुप पानी और सभी पोषक तत्व केवल फसल को मिलते हैं।

**7. कीट एवं रोगों का कम प्रभाव–** पौधों के आसपास वायुमंडल में नमी की सान्द्रता कम रहती है, इसलिये पौधों में रोग एवं कीट लगने की संभावना कम होती है। पेड़ पौधे स्वस्थ रहते है, जिससे कीटनाशक दवाइयों पर कम खर्च होता है।

**8. श्रम की बचत–** निंदाई–गुड़ाई, सिंचाई, खाद वितरण आदि में श्रम की आवश्यकता कम होती है। यांत्रिक कार्य आसानी से किए जा सकते हैं।

### टपक सिंचाई प्रणाली के प्रकार:

**1. ऑन लाइन–** यह प्रणाली समान्यतः दूर एवं अधिक अन्तराल वाले फलों के बगीचों में उपयोग की जाती है। इसमें पौधों की कतारों के साथ बिछाए जाने वाली लैटरल पाइप में पौधों की दूरी के अनुसार छेद करके ड्रिपर लगाया जाता है।

**2. इन लाइन–** इस प्रणाली का उपयोग समान्यतः पास–पास बोई जाने वाली फसलों जैसे– सब्जी, फूल आदि में उपयोग किया जाता है। इस प्रणाली की लैटरल पाइप में ड्रिपर, निर्माण के समय ही निश्चित दूरी पर अंदर की तरफ लगा दिए जाते है। इन लाइन ड्रिप लैटरल पाइप को जमीन के अन्दर भी लगाया जा सकता है, जिसे उप सतही ड्रिप सिंचाई प्रणाली कहते हैं। इस प्रणाली में केवल उप सतह नम होती है और मृदा की उपरी सतह सूखी रहती है, जिससे वाष्पोत्सर्जन से होने वाली जल हानि कम होती है। मृदा की उपरी सतह सूखी रहने के कारण खरपतवारों की वृद्धि भी नही होती है। यह बाजार में 0.2 मीटर से लेकर 0.90 मीटर की दूरी में उपलब्ध है।

**3. माइक्रो स्प्रिंकलर्स–** इस विधि में सभी अवयव ड्रिप प्रणाली की तरह होते है, केवल लैटरल पाइप में ड्रिपर की जगह पर एक निश्चित दूरी पर माइक्रो स्प्रिंकलर्स नोजल लगा दिये जाते हैं। यह प्रणाली पास–पास बोई जाने वाली फसलें जैसे पालक, मैथी, मटर, प्याज आदि के लिए उपयुक्त है। माइक्रो स्प्रिंकलर्स से पानी फव्वारा की तरह निकलता है, जिससे एक स्प्रिंकलर से जमीन का अधिक क्षेत्र सिंचित किया जा सकता है।

### टपक सिंचाई प्रणाली के मुख्य घटक:

**ड्रिपर–** लैटरल पाइपों में बहने वाला जल ड्रिपर के पौधों तक पहुंचता है और धीरे–धीरे रिस कर पौधों की जड़ों तक पहुंचता है। ड्रिपर विभिन्न प्रवाह दर के आते हैं, जिसका चुनाव जल आवश्यकता, मृदा का प्रकार एवं बिजली की उपलब्धता के आधार पर किया जाता है।

# मूंग की खेती– (किस्में, व पैदावार)

**धीरेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी, राजवीर सिंह एवं अयोध्या प्रसाद पाण्डेय**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

भारत में मूंग (Moong) ग्रीष्म और खरीफ दोनों मौषम की कम समय में पकने वाली अक मुख्य दलहनी फसल है मूंग (Moong) का उपयोग मुख्य रूप से आहार में किया जाता है, जिसमें 24 से 26 प्रतिशत प्रोटीन, 55 से 60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट और 1.3 प्रतिशत वसा होती है यह दलहनी फसल होने के कारण इसके तने में नाइट्रोजन की गाठें पाई जाती है जिसे इस फसल के खेत को 35 से 40 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है ग्रीष्म मूंग की खेती चना, मटर, गेहूं, सरसों, आलू, जौ, अलसी आदि फसलों की कटाई के बाद खाली हुए खेतों में की जा सकती है।

पंजाब, हरियाणा उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थान प्रमुख ग्रीष्म मूंग उत्पादक राज्य हैं धान–गेहूं फसल चक्र वाले क्षेत्रों में जायद मूंग की खेती द्वारा मिटटी उर्वरता को उच्च स्तर पर बनाये रखा जा सकता है लेकिन अच्छी तकनीकी न होने के कारण जितने क्षेत्र में इसकी फसल उगाई जाती है उसके अनुपात में पैदावार अच्छी नही मिलती है इस लेख में मूंग की उन्नत खेती कब्से करें का उल्लेख किया गया है मूंग की जैविक खेती की पूरी जानकारी के लिए यहाँ पढ़ें–

## मूंग हेतु जलवायु

मूंग की फसल हर प्रकार के मौसम में उगाई जा सकती है उत्तर भारत में इसे ग्रीष्म और वर्षा तु में उगाते हैं दक्षिण भारत में इसे रबी में भी उगाते हैं ऐसे क्षेत्र जहां 60 से 75 सेंटीमीटर वर्षा होती है, मूंग के लिए उपयुक्त होते हैं फली बनते और पकते समय वर्षा होने से दाने सड़ जाते हैं एवं काफी हानि होती है उत्तरी भारत में मूंग को वसंत तु (जायद) में भी उगाते हैं अच्छे अंकुरण और समुचित बढ़वार हेतु क्रमशः 25 डिग्री तथा 20 से 40 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है

## उपयुक्त भूमि

दोमट भूमि सबसे अधिक उपयुक्त होती है इसकी खेती मटियार एवं बलुई दोमट में भी की जा सकती है, जिनका पी एच 7.0 से 7.5 हो, इसके लिए उत्तम हैं खेत में जल निकास उत्तम होना चाहिए।

## उन्नत किस्में

**टाइप 44–** इस मूंग की किस्म का पौधा बौना होता है तना अर्धविस्तारी तथा पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं फूल पीले, बीज गहरे हरे रंग के एवं मध्यम आकार के होते हैं फसल पकने में 60 से 70 दिन का समय लेती है यह सभी मौसमों में उगाई जा सकती है।

**मूंग एस 8–** पौधा मध्यम ऊंचाई का तथा सीधे बढ़ने वाला होता है तना विस्तारी, फूल हल्के पीले रंग के, फलियां 6 से 8 सेंटीमीटर लम्बी, चिकनी व काली होती हैं एक फली में 10 से 12 तक हरे चमकदार बीज, फसल तैयार होने में 75 से 80 दिन लेती है इसमें पीले मोजैक रोग का प्रकोप कम होता है यह खरीफ तु में उगाई जा सकती है।

**पूसा विशाल–** उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र हेतु बसंत और ग्रीष्म मौसम में बुवाई के लिए उपयुक्त, यह विषाणु जनित पीली चित्ती रोग की प्रतिरोधी, एक साथ पकने वाली है जो बसंत के मौसम में 65 से 70 दिनों में और ग्रीष्म में 60 से 65 दिनों में पककर तैयार हो जाती है पैदावार 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**पूसा रतना–** मुंग की यह किस्म उत्तर क्षेत्र में खरीफ मौसम में बुवाई के लिए उपयुक्त, एक साथ पकने वाली, 65 से 70 दिनों में पककर तैयार, विषाणु जनित पीली चित्ती रोग की सहिष्णु है पैदावार 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**पूसा 0672–** यह किस्म उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र, खरीफ मौसम में बुवाई के लिए उपयुक्त, मूंग के विषाणु जनित पीली चित्ती रोग व अन्य रोगों की सहिष्णु, दाना चमकदार हरा, आकर्षक और मध्यम आकार का होता है पैदावार 10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**पूसा 9531–** उत्तर पश्चिम क्षेत्र में खरीफ मौसम के लिए उपयुक्त यह, 60 से 65 दिनों में पककर तैयार, विषाणु जनित पीली चित्ती रोग एवं कीटों की सहिष्णु, औसत पैदावार 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**मूग जवाहर 45–** इसका पौधा लम्बा व सीधा, पत्तियां हरी, फूल पीले, बीज चमकदार व हरे रंग के, पकने का समय 80 दिन, खरीफ के लिए उपयुक्त है।

**पी एस 16–** पत्तियां पीलापन लिए हुए हरे रंग की, फूल पीले, बीज चमकदार हरे रंग के, तैयार होने से 60 से 70 दिन का समय लगता है यह खरीफ और ग्रीष्म, दोनों तुओं के लिए उपयुक्त है।

**पी एस 10 (कांति)–** इसका पौधा भी सीधा, फूल पीले बड़े आकार के धुंधले, फसल 75 दिन में तैयार होती है इस किस्म कीं फलियां एक साथ पकती हैं और खरीफ के लिए उपयुक्त है।

**मूंग पूसा बैसाखी–** यह किस्म टाइप 44 के चयन से निकाली गई है पौधा बौना झाड़ीनुमा, पत्तियां हरी, तने में हल्के गुलाबी रंग के धब्बे, फूल भूरा रंग लिए हुए क्रीमी रंग के, बीज हरे रंग के मध्यम आकार के, फसल 60 से 70 दिन में तैयार हो जाती है सभी फलियां लगभग एक साथ पकती हैं और यह ग्रीष्म तु के लिए अधिक उपयुक्त है।

**पंत मूंग 1–** इसका पौधा सीधा बढ़ने वाला गहरे हरे रंग का, बीज हरे रंग के मध्यम आकार के, पीला मोजैक विषाणु और सर्कोस्पोरा पर्ण

चित्ती रोग के लिए काफी हद तक प्रतिरोधी, खरीफ में 70 से 75 एवं जायद में 65 से 70 दिन लेती है।

**पंत मुंग 2–** इसका पौधा मध्यम ऊंचाई का, पकने के लिए 60 से 65 दिनों की आवश्यकता, खरीफ में उगाना उपयुक्त, यह 65 से 70 दिन लेती है यह पीला मोजैक विषाणु रोग के लिए मध्यम प्रतिरोधी है।

**पंत मूंग 3–** इसके पौधे सीधे बढ़ने वाले, खरीफ में उगाने से अधिक लाभ मिलता है बीज चमकीले एवं मध्यम आकार के, 65 से 70 दिन में पकती है यह बहुरोग प्रतिरोधी प्रजाति है।

**पंत मूंग 4–** इसका पौधा मध्यम ऊंचाई का, मूंग और उड़द दोनों के संयोग से विकसित की गई है बीज चमकीले हरे और मध्यम आकार के, बहुरोग प्रतिरोधी, पकने की अवधि 65 से 70 दिन है यह उत्तर–पूर्वी भारत के मैदानी क्षेत्रों में खरीफ मौसम के लिए अनुमोदित की गई है।

**पंत मूंग 5–** यह जायद मौसम के लिए उपयुक्त है इसके दाने चमकीले और बड़े आकार, 1000 दानों का भार 50 से 55 ग्राम, फलियां गुच्छों में लगती हैं यह उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित, औसत उपज 15 से 18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है किस्मों की अधिक जानकारी के लिए यहाँ पढ़ें–

## बुआई समय

खरीफ मूंग की बुआई का उपयुक्त समय जून के द्वितीय पखवाड़े से जुलाई के प्रथम पखवाड़े के मध्य है बसंत कालीन मूंग को मार्च के प्रथम पखवाड़े में और ग्रीष्मकालीन मूंग को 15 मार्च से 15 अप्रैल तक बोनी कर देना चाहिए बोनी में विलम्ब होने पर फूल आते समय तापक्रम वृद्धि के कारण फलियाँ कम बनती हैं या बनती ही नहीं है, इससे इसकी पैदावार प्रभावित होती है।

## खेत की तैयारी

खरीफ की फसल के लिए एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करना चाहिए और वर्षा प्रारंभ होते ही 2 से 3 बार देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई कर खरपतवार रहित करने के उपरान्त खेत में पाटा चलाकर समतल करें दीमक से बचाव के लिये क्लोरोपायरीफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 20 से 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिलाना चाहिए ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती के लिये रबी फसलों के कटने के तुरन्त बाद खेत की तुरन्त जुताई कर 4 से 5 दिन छोड़ कर पलेवा करना चाहिए पलेवा के बाद 2 से 3 जुताइयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से कर पाटा लगाकर खेत को समतल और भुरभुरा बनावे इससे उसमें नमी संरक्षित हो जाती है तथा बीजों से अच्छा अंकुरण मिलता हैं।

## बीजशोधन

मिट्टी और बीज जनित रोगों से बीजों के बचाव के लिए थायरम 2 ग्राम + कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम या कार्बेन्डाजिम केप्टान (1:2) 3 ग्राम दवा या कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से शोधित कर लें इसके बाद बीज को इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्लू एस से 7 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करें।

# हरी खाद – मिट्टी और फसल दोनों के लिए उपयोगी

**सुभाष सिंह**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

रासायनिक उर्वरकों के पर्याय के रूप में हम जैविक खादों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद आदि को उपयोग कर सकते हैं। इनमें हरी खाद सबसे सरल व अच्छा प्रयोग है। बढ़ते ऊर्जा संकट, उवर्रकों के मूल्यों में वृद्धि तथा गोबर की खाद की सीमित आपूर्ति से आज हरी खाद का महत्व बढ़ गया है। दूसरी तरफ मृदा के लगातार दोहन से उसमें उपस्थित पौधे की बढ़वार के लिये आवश्यक पोषक तत्व नष्ट होते जा रहे हैं। इनकी क्षतिपूर्ति हेतु व मृदा की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिये हरी खाद एक उत्तम विकल्प है। भारत में मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार व झारखंड में हरी खाद का प्रचलन है।

### हरी खादः

कृषि में हरी खाद (Green manure) उस सहायक फसल को कहते हैं जिसकी खेती मुख्यतः भूमि में पोषक तत्त्वों को बढ़ाने तथा उसमें जैविक पदाथों की पूर्ति करने के उद्देश्य से की जाती है। प्रायः इस तरह की फसल को इसके हरी स्थिति में ही हल चलाकर मिट्टी में मिला दिया जाता है। हरी खाद से भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है और भूमि की रक्षा होती है। यह एक प्रकार का जैविक खाद है जो कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढाकर मृदा की भौतिक–रासायनिक स्थिति को सुधारती है तथा विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाती है।

### हरी खाद के प्रकारः

**1. उसी स्थान पर उगाई जाने वाली हरी खाद की फसलें–** भारत के अधिकतर क्षेत्रों में यह विधि अधिक लोकप्रिय है। इसमें जिस खेत में हरी खाद का उपयोग करना है उसी खेत में फसल को उगाकर एक निश्चित समय पश्चात् पाटा चलाकर मिट्टी पलटने वाले हल से जोतकर मिट्टी में सडने को छोड़ दिया जाता है। फसल उन्ही क्षेत्रों में उगाई जाती है जहाँ सिंचाई की पर्याप्त सुविधा हो। हरी खाद हेतु वाली फसलें जैसे ढैंचा, ग्वार, मूँग, उड़द, सनई एवं लोबिया आदि की बुवाई कर पुष्पावस्था में खेत में दबा देते हैं।

**2. अपने स्थान से दूर उगाई जाने वाली हरी खाद की फसलें–** यह विधि उन क्षेत्रों के लिये प्रभावकारी हैं जहां वार्षिक वर्षा कम होती हैं। यह विधि भारत में अधिक प्रचलित नहीं है, परन्तु दक्षिण भारत में हरी खाद की फसल अन्य खेत में उगाई जाती है, और उसे उचित समय पर काटकर जिस खेत में हरी खाद देना रहता है उसमें जोत कर मिला दिया जाता है। इस विधि में जंगलों, खेत की मेड़ों, बेकार भूमियों और अन्य स्थानों पर पड़े पौधों, झाड़ियों की पत्तियों, टहनियों आदि को इकट्ठा करके वांछित खेत में मिला दिया जाता है। उदाहरण– सुबबूल, सदाबहार, अमलतास, सफेद आंक आदि।

### हरी खाद की फसल उगाने के लिये कृषि विधियाँ एवं मृदा पलटने की अवस्थाः

कम उपजाऊ समस्याग्रस्त मृदा में इन फसलों को कम समय में अच्छी बढ़वार के लिए दलहनी फसलों में 20 से 25 किग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टेयर तथा गैर–दलहनी फसलों में 40 से 50 किग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के समय डालने से काफी लाभ होता है। इन फसलों को परती अवस्था में उचित नमी के समय बीज को छिड़क कर बो दिया जाता है एवं एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके पाटा चला दिया जाता है। मृदा में थोड़ी मात्रा में 40 से 50 किग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर तथा 20–25 किग्रा. प्रति हेक्टेयर पोटाश की मात्रा डालने से सड़ने गलने की क्रिया शीघ्रता से पूर्ण होने में सहायता मिलती है।

हरी खाद की फसल को बुआई के दिन से 40 से 60 दिन की अवस्था में पाटा लगाकर मिट्टी पलटने वाले हल से 15 से 20 सेमी की गहराई पर पलट देना चाहिए। समय से पहले पलट देने से पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ प्राप्त नहीं होते तथा देर से पलटने से रेशा अधिक होने के कारण सड़ने–गलने में अधिक समय लगता है। अतः अचित समय पर पलटना लाभदायक होता है। अधिक वर्षा तथा अधिक तापक्रम की दशा में सड़ने–गलने की प्रक्रिया शीघ्र–प्रारंभ हो जाती है। ढैंचा या सनई की फसल को हरी खाद के रूप में पलटने के बाद पानी भरकर धान की रोपाई की जा सकती है।

### हरी खाद के गुण व लाभः

1. हरी खाद केवल नत्रजन व कार्बनिक पदार्थों का ही साधन नहीं है, बल्कि इससे मिट्टी में कई अन्य आवश्यक पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं।
2. हरी खाद के प्रयोग में मृदा भुरभुरी, वायु संचार में अच्छी, जलधारण क्षमता में वृद्धि, अम्लीयता/क्षारीयता में सुधार एवं मृदा क्षरण में भी कमी होती है।
3. हरी खाद के प्रयोग से मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं क्रियाशीलता बढ़ती है तथा मृदा की उर्वरा शक्ति एवं उत्पादन क्षमता भी बढ़ती है।

4. हरी खाद से मृदाजनित रोगों में भी कमी आती है।
5. इसके प्रयोग से रसायनिक उर्वरकों में कमी करके भी टिकाऊ खेती कर सकते हैं।
6. फसल शीघ्र वृद्धि करने वाली होनी चाहिए।
7. फसल की जल, खाद व उर्वरक की मांग कम से कम होनी चाहिए।
8. रोग एवं कीट प्रतिरोधक फसल होनी चाहिए।
9. फसल कम उपजाऊ भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सके।
10. उगाने में न्यूनतम खर्च होना चाहिए।
11. न्यूनतम सिंचाई व कम से कम पादप संरक्षण होना चाहिए।

**सारणीः** हरी खाद की फसलें, बुवाई का समय, बीज दर एवं उत्पादन क्षमता

| फसल | बुवाई का समय | बीज दर (कि.ग्रा./ हैक्टेयर) | हरे पदार्थ की मात्रा (टन / हैक्टेयर) | प्राप्त नाइट्रोजन (कि.ग्रा./ हैक्टेयर) |
|---|---|---|---|---|
| खरीफ फसलों हेतु | | | | |
| सनई | अप्रैल - जुलाई | 80-100 | 18-28 | 60-100 |
| ढैंचा | अप्रैल-जुलाई | 80-100 | 20-25 | 84-105 |
| लोबिया | अप्रैल-जुलाई | 45-55 | 15-18 | 74-88 |
| उडद | जून -जुलाई | 20-22 | 12-Oct | 40-49 |
| मूंग | जून -जुलाई | 20-22 | 10-Aug | 38-48 |
| ज्वार | अप्रैल - जुलाई | 30-40 | 20-25 | 68-85 |
| रबी फसलों हेतु | | | | |
| सैंजी | अक्टूबर - दिसम्बर | 25-30 | 26-29 | 120-135 |
| बरसीम | अक्टूबर - दिसम्बर | 20-30 | 16 | 60 |
| मटर | अक्टूबर - दिसम्बर | 80-100 | 21 | 67 |

# मधुमक्खी पालन में रोजगार के सुनहरे अवसर

**रमा शर्मा**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

कृषि क्रियाएँ लघु व्यवसाय से बड़े व्यवसाय में बदलती जा रही हैं। कृषि और बागवानी उत्पादन बढ़ रहा है। जबकि कुल कृषि योग्य भूमि घट रही है। कृषि के विकास के लिए फसल, सब्जियां और फलों के भरपूर उत्पादन के अतिरिक्त दूसरे व्यवसायों से अच्छी आय भी जरुरी है। मधुमक्खी पालन एक ऐसा ही व्यवसाय है जो मानव जाति को लाभान्वित कर रहा है। यह एक कम खर्चीला घरेलु उद्योग है, जिसमें आय, रोजगार व वातावरण शुद्ध रखने की क्षमता है। यह एक ऐसा रोजगार है जिसे समाज के हर वर्ग के लोग अपना कर लाभान्वित हो सकते हैं। मधुमक्खी पालन कृषि व बागवानी उत्पादन बढ़ाने की क्षमता भी रखता है।

मधुमक्खियां मौन समुदाय में रहने वाली कीट वर्ग की जंगली जीव हैं। इन्हें उनकी आदतों के अनुकूल कृत्रिम ग्रह (हाईव) में पाल कर उनकी वृद्धि करने तथा शहद एवं मोम आदि प्राप्त करने को मधुमक्खी पालन या मौन पालन कहते हैं। शहद एवं मोम के अतिरिक्त अन्य पदार्थ, जैसे गोंद (प्रोपोलिस, रायल जेली, डंक–विष) भी प्राप्त होते हैं। साथ ही मधुमक्खियों से फूलों में परपरागण होने के कारण फसलों की उपज में लगभग एक चैथाई अतिरिक्त बढ़ोतरी हो जाती है। आजकल मधुमक्खी पालन ने कम लागत वाला कुटीर उद्योग का दर्जा ले लिया है। ग्रामीण भूमिहीन बेरोजगार किसानों के लिए आमदनी का एक साधन बन गया है। मधुमक्खी पालन से जुड़े कार्य जैसे बढईगिरी, लोहारगीरी एवं शहद विपणन में भी रोजगार का अवसर मिलता है ।

### मधुमक्खी परिवार :

एक परिवार में एक रानी, कई हजार कमेरी तथा 100–200 नर होते हैं।

**रानी–** यह पूर्ण विकसित मादा होती है एवं परिवार की जननी होती है। रानी मधुमक्खी का कार्य अंडे देना है। अच्छे पोषण वातावरण में एक इटैलियन जाती की रानी एक दिन में 1500–1800 अंडे देती है। जबकि देशी मक्खी करीब 700–1000 अंडे देती है। इसकी उम्र औसतन 2–3 वर्ष होती है।

**नर मधुमक्खी / निखट्टू–** यह रानी से छोटी एवं कमेरी से बड़ी होती है। रानी मधुमक्खी के साथ सम्भोग के सिवा यह कोई कार्य नहीं करती सम्भोग के तुरंत बाद इनकी मृत्यु हो जाती है और इनकी औसत आयु करीब 60 दिन की होती है।

### मधुमक्खियों की किस्में:

भारत में मुख्य रूप से मधुमक्खी की चार प्रजातियाँ पाई जाती हैं:

छोटी मधुमक्खी (एपिस फ्लोरिय), भैंरो या पहाड़ी मधुमक्खी (एपिस डोरसाटा), देशी मधुमक्खी (एपिस सिराना इंडिका) तथा इटैलियन या यूरोपियन मधुमक्खी (एपिस मेलिफेरा)।

इनमे से एपिस सिराना इंडिका व एपिस मेलिफेरा जाती की मधुमक्खियों को आसानी से लकड़ी के बक्सों में पाला जा सकता है। देशी मधुमक्खी प्रतिवर्ष औसतन 5–10 किलोग्राम शहद प्रति परिवार तथा इटैलियन मधुमक्खी 50 किलोग्राम तक शहद उत्पादन करती हैं।

### मधुमक्खी पालन के लिए अवश्यक सामग्री:

मौन पेटिका, मधु निष्कासन यंत्र, स्टैंड, छीलन छुरी, छत्ताधार, रानी रोक पट, हाईवे टूल (खुरपी), रानी रोक द्वार, नकाब, रानी कोष्ठ रक्षण यंत्र, दस्ताने, भोजन पात्र, धुआंकर और ब्रुश आदि।

### मधुमक्खी परिवार का उचित रखरखाव एवं प्रबंधन:

मधुमक्खी परिवारों की सामान्य गतिविधियाँ 100 और 380 फैहरेनहाइट के बीच में होती हैं। उचित प्रबंध द्वारा प्रतिकूल परिस्तिथियों में इनका बचाव आवश्यक है। उतम रखरखाव से परिवार शक्तिशाली एवं क्रियाशील बनाये रखे जा सकते हैं। मधुमक्खी परिवार पर विभिन्न प्रकार के रोगों एवं शत्रुओं का प्रकोप समय समय पर होता रहता है। जिनका निदान उचित प्रबंधन द्वारा किया जा सकता है। इन स्तिथियों को ध्यान में रखते हुए निम्न प्रकार वार्षिक प्रबंधन करना चाहिए।

**शरदऋतु में मधुवाटिका का प्रबंधन–** शरद ऋतु में विशेष रूप से अधिक ठंढ पड़ती है जिससे तापमान कभी कभी 10 या 20 डिग्री से. से नीचे तक चला जाता है। ऐसे में मौन वंशो को सर्दी से बचाना जरुरी हो जाता है। सर्दी से बचने के लिए मौनपालकों को टाट की बोरी के दो तह बनाकर आंतरिक ढक्कन के नीचे बिछा देना चाहिए। यह कार्य अक्टूबर में करना चाहिए। इससे मौन गृह का तापमान एक समान गर्म बना रहता है। यदि संभव हो तो पोलीथिन से प्रवेश द्वार को छोड़कर पूरे बक्से को ढंक देना चाहिए। या घास फूस या पुवाल का छप्पर टाट बना कर बक्सों को ढक देना चाहिए। इस समय मौन गृहों को ऐसे स्थान पर रखना चाहिए, जहाँ जमीन सूखी हो तथा दिन भर धूप रहती हो। परिणामस्वरूप मधुमक्खियाँ अधिक समय तक कार्य करेंगी। अक्टूबर में यह देख लेना चाहिए कि रानी अच्छी हो तथा एक साल से अधिक पुरानी न हो। यदि ऐसा है तो उस वंश को नई रानी दे देना चाहिए। जिससे शरद ऋतु में श्रमिकों की आवश्यकता बनी रहे, जिससे मौन वंश कमजोर न हो। ऐसे क्षेत्र जहाँ शीतलहर चलती हो तो इसके प्रारम्भ होने से पूर्व ही यह निश्चित कर

लेना चाहिए कि मौन गृह में आवश्यक मात्रा में शहद और पराग है या नहीं।

यदि शहद कम है या नहीं है तो मौन वंशों को 50:50 के अनुपात में चीनी और पानी का घोल बनाकर, उबालकर ठंडा होने के पश्चात मौन गृहों के अंदर रख देना चाहिए। जिससे मौनों को भोजन की कमी न हो। यदि मौन गृह पुराने हो गये हों या टूट गये हों तो उनकी मरम्मत अक्टूबर–नवम्बर तक अवश्य करा लेनी चाहिए। जिससे इनको सर्दियों से बचाया जा सके। इस समय मौन वंशों को फूल वाले स्थान पर रखना चाहिए। जिससे कम समय में अधिक से अधिक मकरंद और पराग एकत्र किया जा सके। ज्यादा ठंड होने पर मौन गृहों को नहीं खोलना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने पर ठण्ड लगने से शिशु मक्खियों के मरने का डर रहता है। साथ ही श्रमिक मधुमक्खियाँ डंक मारने लगती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर गेंहूँ के भूसे या धान के पुवाल से अच्छी तरह मौन गृह को ढंक देना चाहिए।

**बसंत ऋतु में मौन प्रबंधन–** बसंत ऋतु मधुमक्खियों और मौन पालकों के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। इस समय सभी स्थानों में पर्याप्त मात्रा में पराग और मकरंद उपलब्ध रहते हैं, जिससे मौनों की संख्या दुगनी बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप शहद का उत्पादन भी बढ़ जाता है। इस समय देख रेख की आवश्यकता उतनी ही पड़ती है, जितनी अन्य मौसमों में होती है। शरद ऋतु समाप्त होने पर धीरे धीरे मौन गृह की पैकिंग (टाट, पट्टी और पुवाल के छप्पर इत्यादि) हटा देना चाहिए। मौन गृहों को खाली कर उनकी अच्छी तरह से सफाई कर लेनी चाहिए। पेंदी पर लगे मोम को भलीभांति खुरच कर हटा देना चाहिए। मौन गृहों पर बाहर से सफेद पेंट लगा देना चाहिए, जिससे बाहर से आने वाली गर्मी में मौन गृहों का तापमान कम रह सके।

बसंत ऋतु के प्रारम्भ में मौन वंशों को कृत्रिम भोजन देने से उनकी संख्या और क्षमता बढती है। जिससे अधिक से अधिक उत्पादन लिया जा सके। रानी यदि पुरानी हो गयी हो तो उसे मारकर अंडे वाला फ्रेम दे देना चाहिए, जिससे दूसरे वाला सृजन शुरू कर दे। यदि मौन गृह में मौन की संख्या बढ़ गयी हो तो मोम लगा हुआ अतिरिक्त फ्रेम देना चाहिए। जिससे कि मधुमक्खियाँ छत्ते बना सकें। यदि छत्तों में शहद भर गया हो तो मधु निष्कासन यंत्र से शहद को निकल लेना चाहिए। जिससे मधुमक्खियां अधिक क्षमता के साथ कार्य कर सकें। यदि नरों की संख्या बढ़ गयी हो तो नर प्रपंच लगा कर इनकी संख्या को नियंत्रित कर देना चाहिए।

**ग्रीष्म ऋतु में मौन प्रबंधन–** ग्रीष्म ऋतु में मौनों की देखभाल ज्यादा जरुरी होती है। जिन क्षेत्रों में तापमान 400 फेहरेनहाइट से ऊपर तक पहुंचता है, वहां पर मौन गृहों को किसी छायादार स्थान पर रखना चाहिए। लेकिन सुबह की सूर्य की रौशनी मौन गृहों पर आवश्यक है, जिससे मधुमक्खियाँ सुबह से ही सक्रिय होकर अपना कार्य करना प्रारम्भ कर सकें। इस समय कुछ स्थानों जहाँ पर बरसीम, सूर्यमुखी इत्यादि की खेती होती है, वहां पर मधुस्त्राव का समय भी हो सकता है, जिससे शहद उत्पादन किया जा सकता है। इस समय मधुमक्खियों को साफ और बहते हुए पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए पानी की उचित व्यवस्था मधुवाटिका के आस पास होनी चाहिए। मौनों को लू से बचाने के लिए छप्पर का प्रयोग करना चाहिए, जिससे गर्म हवा सीधे मौन गृहों के अंदर न घुस सके। अतिरिक्त फ्रेम को बाहर निकाल कर उचित भण्डारण करना चाहिए।

मौन वाटिका में यदि छायादार स्थान न हो तो बक्से के उपर छप्पर या पुआल डालकर उसे सुबह शाम भिगोते रहना चाहिए। जिससे मौन गृह का तापमान कम बना रहे। कृत्रिम भोजन के रूप में 50–50 के अनुपात में चीनी और पानी को उबाल कर ठंडा होने पर मौन गृह के अंदर कटोरी या फीडर में रखना चाहिए। मौन गृह के स्टैंड की कटोरियों में प्रतिदिन साफ और तजा पानी डालना चाहिए। यदि मौनों की संख्या ज्यादा बढ़ने लगे तो अतिरिक्त फ्रेम डालना चाहिए।

**वर्षा ऋतु में मौन प्रबंधन–** वर्षा ऋतु में तेज वर्षा, हवा और शत्रुओं जैसे चींटियाँ, मोमी पतंगा, पक्षियों का प्रकोप होता है। मोमी पतंगों के प्रकोप को रोकने के लिए छत्तों को हटा दें। फ्लोर बोर्ड को साफ करें तथा गंधक पाउडर छिडक कर चींटों की रोकथाम के लिए स्टैंड को पानी भरा बर्तन में रखें तथा पानी में दो तिन बूंदें काले तेल की डालें। मोमी पतंगों से प्रभावित छत्ते, पुराने काले छत्ते एवं फफूंद लगे छत्तों को निकल कर अलग कर देना चाहिए।

## मधुमक्खी परिवारों का विभाजन एवं जोड़नाः

**विभाजन–** अच्छे मौसम में मधुमक्खियों की संख्या बढ़ती है तो मधुमक्खी परिवारों का विभाजन करना चाहिए। ऐसा न किये जाने पर मक्खियाँ घर छोड़कर भाग सकती हैं। विभाजन के लिए मूल परिवार के पास दूसरा खाली बक्सा रखे तथा मूल मधुमक्खी परिवार से 50 प्रतिशत ब्रुड, शहद व पराग वाले फ्रेम रखें। रानी वाला फ्रेम भी नये बक्से में रखें। मूल बक्से में यदि रानी कोष्ठ हो तो अच्छा है अन्यथा कमेरी मक्खियाँ स्वयं रानी कोष्ठक बना लेंगीं तथा 16 दिन बाद रानी बन जाएगी। दोनों बक्सों को रोज एक फीट एक दूसरे से दूर करते जायें जिससे नया बक्सा तैयार हो जायेगा।

**जोड़ना–** जब मधुमक्खी परिवार कमजोर हो और रानी रहित हो तो ऐसे परिवार को दूसरे परिवार में जोड़ दिया जाता है। इसके लिए एक अखबार में छोटे–छोटे छेद बनाकर रानी वाले परिवार के शिशु खण्ड के ऊपर रख लेते हैं तथा मिलाने वाले परिवार के फ्रेम एक सुपर में लगाकर इसे रानी वाले परिवार के उपर रख दिया जाता है। अखबार के उपर थोडा शहद छिडक दिया जाता है, जिससे 10–12 घंटों में दोनों परिवारों की गंध आपस में मिल जाती है। बाद में सुपर और अखबार को हटाकर फ्रेमों को शिशु खण्ड में रखा जाता है।

## मधुमक्खी परिवार स्थानान्तरणः

मधुमक्खी परिवार का स्थानान्तरण करते समय निम्न सूचनाएं ध्यान में रखें–

1. स्थानांतरण की जगह पहले से ही सुनिश्चित करें।

2. स्थानांतरण की जगह दूरी पर हो तो मौन गृह में भोजन की पर्याप्त व्यवस्था करें।

3. प्रवेश द्वार पर लोहे की जाली लगा दें तथा छत्तों में अधिक शहद हो तो उसे निकल लें और बक्सो को बोरी से कील लगाकर सील कर दें।

4. बक्सों को गाड़ी में लम्बाई की दिशा में रखें तथा परिवहन में कम से कम झटके लगें, ताकि छत्ते में क्षति न पहुचे।

5. गर्मी में स्थनान्तरण करते समय बक्सों के उपर पानी छिडकते रहें और यात्रा रात्रि के समय ही करें।

6– नई जगह पर बक्सों को लगभग 8–10 फुट की दूरी पर तथा मुंह पूर्व –पश्चिम दिशा की तरफ रखें ।

7– पहले दिन बक्सों का निरीक्षण न करें। दूसरे दिन धुंआ देने के बाद मक्खियों की जाँच करनी चाहिए तथा सफाई कर देनी चाहिए।

### शहद व मोम निष्कासन व प्रसंस्करणः

मधुमक्खी पालन का मुख्य उद्देश्य शहद एवं मोम उत्पादन करना होता है। बक्सों में स्थित छत्तों में 75–80 प्रतिशत कोष्ठ मक्खियों द्वारा मोमी टोपी से बंद कर देने पर उनसे शहद निकाला जाए। इन बंद कोष्ठों से निकाला गया शहद परिपक्व होता है। बिना मोमी टोपी के बंद कोष्ठों का शहद अपरिपक्व होता है, जिनमें पानी की मात्रा अधिक होती है। मधु निष्कासन का कार्य साफ मौसम में दिन में छत्तों के चुनाव से आरम्भ करके शाम के समय शहद निष्कासन प्रक्रिया आरम्भ करनी चाहिए। अन्यथा मखियाँ इस कार्य में बाधा उत्पन्न करती हैं।

शहद से भरे छत्तों को बक्से में रख कर ऐसे सभी बक्सों का कमरे या खेत में बड़ी मच्छरदानी के अंदर रखकर मधु निष्कासन करना चाहिए। अब छीलन चाकू को गर्म पानी में डुबोकर एवं कपडे से पोंछकर मोम की टोपियाँ हटा देनी हैं। छत्ते को शहद निकालने वाली मशीन में रखकर यंत्र को घुमाकर कर बारी बारी से छत्तों को पलटकर दोनों ओर से शहद निकाला जाता है। इस शहद को मशीन से निकालकर टंकी में लगभग 48 घंटे तक पड़ा रहने देते हैं। ऐसा करने पर शहद में मिले हवा के बुलबुले तथा मोम इत्यादि शहद की उपरी सतह पर तथा मैली वस्तुएं पेंदी पर बैठ जाती हैं। शहद को पतले कपडे से छानकर स्वच्छ एवं सूखी बोतलों में भरकर बेचा जा सकता है।

**शहद प्रसंस्करण (घरेलु विधि)–** इस प्रकार निष्कासित शहद में अशुद्धियां जैसे पानी की अधिक मात्रा, पराग, मोम एवं कीट के कुछ भाग रह सकते हैं। इन अशुद्धियों को हटाने के लिए शहद का प्रसंस्करण जरुरी होता है। इसके लिए बड़े गंजे में पानी रखकर गर्म किया जाता है तथा छोटे कपडे से छान कर शहद रखते हैं। शहद को चम्मच द्वारा हिलाते रहें ताकि सारा शहद एक समान गर्म हो। जब शहद 600 फैहरेनहाइट तक गर्म हो जाए तब शहद वाले बर्तन को पानी वाले बर्तन से अलग कर देते हैं।

इस गर्म किये गए शहद को बारीक छलनी द्वारा छानकर टोंटी लगे स्टील के ड्रम में भर देते हैं। जब शहद ठंडा हो जाये तो उसके उपर जमी मोम के परत को करछी से हटा कर टोंटी द्वारा शहद को बोतलों में भर लिया जाता है।

**मोम का निष्कासन एवं प्रसंस्करण–** पुराने छत्तों से मोम काटकर उबलते पानी में डाल कर पिघला लेते हैं। उपर तैरते हुए मोम को निकल लिया जाता है। इस मोम को साफ करने हेतु 2–3 बार शहद पानी में पिघलाकर ठंडा कर लेते हैं। प्रत्येक बार जमे हुए मोम की तलहटी पर लगी गन्दगी को चाकू से काटकर अलग करते रहना चाहिए।

### मधुमक्खियों के भोजन स्त्रोतः

**जनवरीः** सरसों, तोरियाँ, कुसुम, चना, मटर, राजमा, अनार, अमरुद, कटहल, यूकेलिप्टस इत्यादि।

**फरवरीः** सरसों, तोरियाँ, कुसुम, चना, मटर, राजमा, अनार, अमरुद, कटहल, यूकेलिप्टस, प्याज, धनिया, शीशम इत्यादि।

**मार्चः** कुसुम, सूर्यमुखी, अलसी, बरसीम, अरहर, मेथी, मटर, भिन्डी, धनियाँ, आंवला, निम्बू, जंगली जलेबी, शीशम, यूकेलिप्टस, नीम इत्यादि।

**अप्रैलः** सूरजमुखी, बरसीम, अरण्डी, रामतिल, भिन्डी, मिर्च, सेम, तरबूज, खरबूज, करेला, लोकी, जामुन, नीम, अमलतास इत्यादि।

**मईः** तिल, मक्का, सूरजमुखी, बरसीम, तरबूज, खरबूज, खीरा, करेला, लोकी, इमली, कद्दू, करंज, अर्जुन, अमलतास इत्यादि।

**जूनः** तिल, मक्का, सूरजमुखी, बरसीम, तरबूज, खरबूज, खीरा, करेला, लोकी, इमली, कद्दू, बबूल, अर्जुन, अमलतास इत्यादि।

**जुलाईः** ज्वार, मक्का, बाजरा, करेला, खीरा, लोकी, भिन्डी, पपीता इत्यादि।

**अगस्तः** ज्वार, मक्का, सोयाबीन, मूंग, धान, टमाटर, बबूल, आंवला, कचनार, खीरा, भिन्डी, पपीता इत्यादि।

**सितम्बरः** बाजारा, सनई, अरहर, सोयाबीन, मूंग, धान, रामतिल, टमाटर, बरबटी, भिन्डी, कचनार, बेर इत्यादि।

**अक्टूबरः** सनई, अरहर, धान, अरण्डी, रामतिल, यूकेलिप्टस, कचनार, बेर, बबूल इत्यादि।

**नवम्बरः** सरसों, तोरियां, मटर, अमरुद, शहजन, बेर, यूकेलिप्टस, बोटलब्रुश इत्यादि।

**दिसम्बरः** सरसों, तोरियाँ, राइ, चना, मटर, यूकेलिप्टस, अमरुद इत्यादि।

# कृषि विज्ञान अनुसंधान प्रक्षेत्र, एकेएस वि.वि. सतना

# AKS University
## SATNA

नि:शुल्क* शिक्षा
OBC, SC, ST
के छात्रों के लिये
शासन द्वारा
छात्रवृत्ति के आधार पर
*Condition Apply

India's Best Private Universities
INDIA TODAY
India Today Survey-2018

**27th Rank in INDIA**

University Also Awarded as
- Best Innovative University in Madhya Pradesh 2019
- Best University in Central India 2019
- Leading University in Central India 2018

...and Many More Prestigious Awards

विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों का विदेशों में एजुकेशनल टूर
● अमेरिका ● इजरायल ● हांगकांग ● चीन ● मलेशिया ● थाईलैंड ● इंडोनेशिया ● जापान

AKS University is Dedicated to Uniqueness, Excellence, Creativity, Innovation & Perfection

## Agriculture

- B.Sc. (Hons.) Ag.
- Diploma Agril Engg.
- B.Tech. (Agril. Engg.)
- M.Sc. (Ag.) - Agronomy / Horticulture / Genetics & Plant Breeding / Soil Science and Agriculture Chemistry/ Plant Pathology / Agricultural Economics



धर्मेन्द्र पाण्डेय
B.Sc. (Ag) Hons.
ग्रामीण उद्यानिकी विस्तार अधिकारी
छत्तीसगढ़ शासन



पूजा पाण्डेय
B.Sc. (Ag) Hons.
एग्रीकल्चर टेक्निकल मैनेजर
बिहार शासन

ग्रामीण कृषि विस्तार अधिकारी के 791 पदों हेतु प्रोफेशनल एग्जामिनेशन बोर्ड, भोपाल द्वारा किसान कल्याण एवं कृषि विकास विभाग म.प्र. भोपाल के अन्तर्गत आयोजित भर्ती परीक्षा 2020 की शैक्षणिक योग्यता मान्यता प्राप्त संस्थान या विश्वविद्यालय से B.Sc. एग्रीकल्चर है।

## Commerce

- B.Com. (Hons.) CAP **Syllabus at Par With CA** (Corporate Accounting Practices)
- B.Com. (Hons.) CSP **Syllabus at Par With CS** (Corporate Secretarial Practices)
- B.Com. (Hons.)
- B.Com. (Computer)
- B.Com. (Economics)
- M.Com.

## Management

- BBA (Hons.)
- PGDM
- MBA - Marketing / HR / Finance / Retail / Rural IT & MIS / Banking & Insurance
- MBA - ABM (Agri Business Mgmt.)
- MBA - Logistics & Supply Chain Management

In Collaboration with Safe Express.
1 Year On-Job Training in Safe Express.

- **Executive MBA**

## Engineering

### Polytechnic / B.Tech.

- ME ● CE ● EE ● CSE
- Mechanical with Mechatronics
- Mining & Mine Surveying
- Mining ● Food Tech. ● Cement Tech.
- Agril. Engineering ● Biotech.*

*Eligibility - 12th (Bio/Maths)

### M.Tech.

- Mining ● ME
- Biotech. ● CSE

DGMS द्वारा APPROVED गैस टेस्टिंग Examination Center

## Food Tech.

- B.Sc.
- M.Sc.
- Diploma (Food Tech.) (After 10th)
- B.Tech. (Food Tech.) (After 12th - Bio/Maths)

## Paramedical

- DMLT

Proposed Courses

- Master in Medical Lab Technology (MMLT) (Medical Biochemistry)
- Master in Medical Lab Technology (MMLT) (Medical Hematology)
- Bachelor in Medical Lab Technology (BMLT)
- Bachelor in Physiotherapy (BPTH)
- Diploma in X-Ray Radiographer Tech (DXRT)
- Diploma in Dialysis Technician
- Diploma in Anesthesia Technician
- Operation Theater Technician
- Orthopedic Technician
- Hospital Medical Record Technician

## Computer

- Diploma (CSE)
- B.Sc. IT (Hons.)
- BCA (Hons.)
- DCA ● PGDCA
- B.Sc. CS (Hons.)
- MCA
- B.Tech.(CSE) with AI/ML, CyberSecurity, Robotics
- Diploma in Cyber Security & Digital Forensic

समूह-2 उपसमूह-4 के अन्तर्गत सहायक संपरीक्षक, कनिष्ठ सहायक एवं डाटा एंट्री ऑपरेटर व अन्य पदों हेतु प्रोफेशनल एग्जामिनेशन बोर्ड, भोपाल द्वारा आयोजित भर्ती परीक्षा 2020 की शैक्षणिक योग्यता शासन द्वारा मान्यता प्राप्त संस्था से कंप्यूटर में 1 वर्षीय डिप्लोमा प्रमाण पत्र जैसे की PGDCA या DCA है।

## Basic Science

- B.Sc. (Maths/Bio.)
- B.Sc. - Computer Sc.
- B.Sc.- Geology
- M.Sc.- Chemistry / Physics / Maths

## Life Science

### Biology

- B.Sc.

### Biotechnology

- B.Sc.
- M.Sc. (Biotech/Micro Bio)
- B.Tech.
- M.Tech.

### Environment

- M.Sc. (Environment Sc.)
- PG Diploma in Safety Health & Environment
- PG Diploma in Environment Pollution Mgmt.
- Certificate in Waste Management
- Certificate in Biomedical Waste Management

## PDPT एवं PGPT ट्रेनिंग

- डिप्लोमा माइनिंग इन्जीनियरिंग के उत्तीर्ण छात्र भूमिगत (Underground) कोयला खानों जैसे कि SECL एवं WCL में स्टाईपेंड के साथ 1 वर्षीय PDPT ट्रेनिंग कर रहे हैं।
- बी.टेक माइनिंग इंजीनियरिंग के उत्तीर्ण छात्र SECL एवं WCL में स्टाईपेंड के साथ 1 वर्षीय PGPT ट्रेनिंग कर रहे हैं।

## Industrial Training देश के प्रमुख संस्थानों में

Tata Steel, SAIL, Jindal Steel, Vedanta, NMDC, SECL, BVCCL, ECL, WCL, NCL, Uranium Mines, Satna Cement, Reliance, Century Ramco, UltraTech, NCCBM, Hind. Copper, Heavy Engineering Corporation, Sanjay Gandhi Power Plant, Amarkantak Power Plant, CFMTTI, JP, MECL, MOIL, Utkal Alumina, NSE, CRISP, ATI-Kanpur, Agro Industries. and many more

## Humanities

Ample Opportunities of Jobs in YOGA

### Programmes in Yoga

- PG Diploma in Yoga
- M.A. (Yoga Science)
- M.Sc. (Yoga Science)
- B.A. (Computer)
- B.A. (Public Administration)
- M.A. (Public Administration)
- M.A. (Economics)

माइनिंग इंजीनियर मैनेजमेंट ट्रेनी पद के लिये कोल इंडिया (भारत सरकार) द्वारा आयोजित लिखित परीक्षा में एकेएस विश्वविद्यालय के छात्र चयनित

## Fine Art/Design

- Diploma in Fashion Designing
- B.Design (Bachelor of Design)

Innnovative & Job Oriented Course - Full of Creativity

**B.Design**
(Bachelor of Design)

SPECIALISATION IN: •Product Design •Retail & Interior Design •Fashion Design •Gaming & Animation Design •User Experience & Interface Design

## Education {NCTE Approved}

- B.Ed.
- D.El.Ed.

"Admission in B.Ed./D.El.Ed. - Strictly as per Policy of State Govt.,Act, Statutes, Ordinance & Provision of NCTE Regulations."

- M.A. - Education

## Pharmacy (PCI Approved)

- D.Pharm
- B.Pharm
- M.Pharm in Pharmaceutical Chemistry

## Social Work

- Master of Social Work (MSW)

## Ph.D.

**Sherganj, Panna Road, SATNA (M.P.) Ph.: 8889207776, 8889237776**